धन्यवाद !

इस अमूल्य पुस्तक में धर्मज्ञ सज्जनो ने निम्न प्रकार सहायता दी है। उन्हें कोटिश धन्यवाद है।

२१) श्रीमान सेठ सोहनलाल जी जैन ठि० सेठ कन्हैयालाल जी भोलानाथजी जैन टकमाली जोहरी बाजार जैपुर राजपूताना

११) " " "

११) श्रीमान लाला रामलाल जी श्योलाल जी नं० १ चीनी पट्टी बड़ावाजार कलकत्ता।

११) श्रीमान लाला भम्मनलाल जी जैन, कामां (राज्य भरतपुर)

१०) श्री० जैन पञ्चान सुलतानपुर पोस्ट चिलकाना जिला सहारनपुर मार्फत लाला दर्शनलाल जैन जमींदार।

५) श्रीमान लाला प्यारेलाल जी कन्हैयालाल जी जैन कुमार बिलडिङ्ग कानपुर।

५) श्रीमान डाक्टर भाईलाल जी कपुरचन्द जी, शाह जैन रत्नामृत ओफिस मु० नार जिला कैरा।

४॥) श्रीमान जैन पञ्चान मु० गिरीडी जिला हजारीबाग बंगाल मारफत लाला डह्याभाईजी।

५) श्रीमान लाला जुहारमल जी सहसमलजी मेवाडी बाजार ब्यावर राजपताना।

३) श्रीमान बाई सांकली बाई जी पूज्य मातुश्री शाह लल्लूभाई जी रायचंदजी जैन मु० ओराण जिला अहमदाबाद।

५०) श्रीमती दिगम्बर जैन धर्मप्रभावनी सभा सांभर लेक राजपूताना मा० सभापति द्वारकाप्रसाद जैन।

५) व्याज खाते के जमा।

५१) श्रीमती रतनप्रभादेवी और ज्ञानेन्द्र देव, सुपुत्री व सुपुत्र द्वारकाप्रसाद जैन C K. हाथरस।

१८२॥) जोड़

समाज सेवक—

द्वारकाप्रसाद जैन हाथरस।

श्रीवीतरागायनमः ॥

श्री परमात्मने नमः श्री ऋषभ—महावीर देवायनमः ॥

अहिंसा परमोधर्मः यतो धर्मः ततो जयः ।

धर्मात्माओं के बिना धर्म अन्यत्र कहीं नहीं पाया जा सकता।

भूमिका—उद्देश्य ।

प्रायः ऐसा देखने में आता है कि किसी २ नगर में कुछ जैन [illegible]ति के बांधव व बहिने, षट कर्म व धर्म मार्ग को स्मरण न कर [illegible]सी २ बातों में अन्यथा प्रवर्तते हैं जिससे धर्म के आयतनों पर [illegible]छ आक्षेप व विघ्न अक्सर हो जाता है और उसके अतिरिक्त [illegible] भंडारों के दर्शन तक कठिन हो जाते हैं। स्वाध्याय का तो [illegible]हना ही क्या? प्रिय सज्जनों ! कृपया सोचिये कि हमारे आचार्यों [illegible] कितना परिश्रम और करुणा कर कैसे २ महान ग्रंथ रचे हैं। [illegible]र महत पुरुषों ने परिश्रम व लाखों रुपया खर्च कर, परिपाटी [illegible]लाते आए हैं। अफसोस ! आज हमारे भाई व पंच कहलाकर [illegible]न मंदिरों पर विघ्न व उसके उन्नतिमें बाधा डालतेहैं और जिन [illegible]गमों के दर्शन तक नहीं करते कराते। लेकिन जीर्ण कर अविनय [illegible]रते हैं या यों कहिए कि सदां के लिए जलांजलि दे रहे हैं। [illegible]स से महा अशुभ कर्मों का आश्रव होता है। क्या अमूल्य जैनधर्म [illegible] शास्त्र कम नहीं होते हैं? इन सब बातों का कारण सोचा [illegible]य तो यही कह सकते हैं कि शास्त्रज्ञान नहीं, या स्वाध्याय [illegible]वृति नहीं, या यथा शक्ति अमल और विचार नहीं, अथवा [illegible]प्रमादी बन रहे हैं।

२—द्वितीय हमारे बहुत से अजैन बांधव जैन धर्म या उसके [illegible]सूलों को न जानकर, जैन धर्म या जैनियों की किसी २ बातों पर [illegible]निंदा करते हैं और जैन सम्प्रदाय, उनको जैन धर्म का स्वरूप बताने में प्रमादी हैं अथवा बता नहीं सकते हैं, इन्हीं कारणों से किसी २ स्थान पर हमारे अजैन बांधव, जैनियों के धार्मिक कार्य व उत्सवों पर हर्ष और पुण्य संचय न करते हुए, विघ्न का कारण पैदा कर देते हैं। हमारा अजैन समाज से नम्र निवेदन है कि वे जैनियों से मित्रता कर जैन मंदिर में नित्य जावें और जैन धर्म से लाभ उठावें।

३—इन्हीं अशुभ कारणों को दूर करने के लिए, यह अमूल्य [illegible]स्तक प्रकाशित की है ताकि स्वाध्याय प्रचार और धर्म प्रभावना [illegible]रा, अन्त में मोक्ष सुख लाभ प्राप्त करें।

द्वारकाप्रसाद जैन C. K.

निवेदन ॥

प्रिय बंधुवर्गो ! यह अमृतधारा रूपी धर्मोपदेश बडे परिश्रम से प्रकाश कर आप साहयों के कर कमलों में भेंट करता हूं। आशा है कि आप धर्मज्ञ मुझ मंद बुद्धी पर क्षमा भाव रखते हुए जैन अजैन समाज में धर्मोन्नति करेंगे। इस पुस्तक से धर्मोपदेश समय प्रथम सिद्धों, विदेह क्षेत्र के विद्यमान तीर्थंकरों, और तीन लोक के कृतम अकृतम चैत्यालयों को नमस्कार कर, एक णमोकार मँत्र की जाप और निम्न मँत्र को २१ वार जाप देकर व्याख्यान शुरू करने की कृपा करें।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कीर्ति मुख मंद्रे कुरू कुरू स्वाहः ।

२–इसको अविनय करने या रद्दी में डालने से, पापाश्रव होगा।
पढने व नित्य सब को सुनाने से, सदा मङ्गल होगा॥

३–यदि अविनय व रद्दी का कारण हो, तो किसी जैन मँदिर या अन्य भाई को देदेने की कृपा करें।

४–भारत में प्रत्येक जैन मंदिर में, एक चौकी पर यह पुस्तक हर वक्त विराजमान रहे ताकि दर्शक पढ़ सकें। ऐसे प्रबंध की मैं प्रार्थना करता हूं।

५–भारत के प्रत्येक लाइब्रेरी, वाचनालय, संस्था, पाठशाला, जैन मंदिर इत्यादि २ में यह पुस्तक रक्खी जाने का मैं प्रस्ताव करता हूं।

६–यह प्रत्येक मनुष्य व स्त्रीको विचार रहे कि जो तीनलोक के शिखर पर, सिद्ध भगवान, परमात्मा, ईश्वर, खुदा मौजूद हैं तथा विदेह क्षेत्र में केवली भगवान, उनके ज्ञान में, हमारे सर्व प्रकार के कर्तव्य झलकते हैं। इस लिए हम लोगों को सोच विचार कर शुभ और न्याय पूर्वक कार्य करना उचित है ताकि बुराइयों से बचें। कहावत भी है कि "भाई अकेले में भी यदि कोई साक्षी नहीं है तो ईश्वर, परमात्मा, खुदा, तो शाक्षी है वह तो देखता है"

७–जो कोई, किसी विषय पर मुझ से पत्र व्यवहार करना चाहें, तो निम्न पते पर कर सक्ते हैं।

समाज हितैषी——

द्वारकाप्रसाद जैन, C. K.
पोस्टमास्टर भरतपुर शहर—(राजपूताना)

शुद्धि सूचना पत्र ।

(पुस्तक पढ़ने से पहले ठीक कर लेवें)

पृष्ठ नं०	पंक्ति नं०	अशुद्ध	शुद्ध
३	हिंदी ७	फर्मांबरदार	वफादार
४	१०	Fxecutive	Executive
७	५	श्रशठि	श्रेशठि
८	१२	स	से
१३	२२	हवयह	वह यह
१५	१	संरयात	संख्यात
२५	७	Structure	Structural
„	„	Enginere	Engineer
२८	१४	कवलज्ञान	केवल ज्ञान
३९	१७	सँदिर	मँदिर
४०	११	भोलो	भीलों
„	२७	वदनाओ	वेदनाओ
४३	१	स्पश	स्पर्श
४१	२५	अपन	अपने
४८	७	प्रकृत	प्राकृत
„	२९	के	कि
४९	२	स्वरू	स्वरूप;
„	३	नपुसक	नपुंसक
„	१७	गुणानवाद	गुणानुवाद
५०	११	नमल	निर्मल
„	२८	ओर	और
५१	११	दते	देते
„	„	कामा	कामों
„	१३	ससारी	संसारी
„	१८	ह	है
„	२४	उपक	उनके
„	२६	क	के
„	„	नप	नग्न
„	२७	दखने	देखने
५२	१८	लगा	लगाए
५३	१०	पण	पूर्ण
५३	२३	ललते	लगते
५३	२४	सोम	सीम

पत्र नं०	पंक्ति नं०	अशुद्ध	शुद्ध
५४	२	अथा	अन्थों
५४	३	दखकर	देखकर
५४	१६	वडेदा	बड़ोदा
५५	४	अपन	अपने
	६	धम	धर्म
„	८—११	धर्ग	धर्म
„	९	टोक	टिक
„	१२	भाकराचार्य	भास्कराचार्य
„	१४	का	को
„	१८	अनाद	अनादि
„		भूल्व	भूल्य
५६	४	डाक्ट	डाक्टर
५६	८	जोधपर	जोधपुर
५६	१६	ब्राह्मणा	ब्राह्मणों
६२	१८	वाले	बोल
६४	१५	तार्थकरों	तीर्थकरों
६६	१६	कहीं	कहीं
६७	४	का	की
६७	५	अतर्निष्ट	अन्तर्निष्ट
६७	२४	पुत्रा	पुत्रों
७४	१	लकडी	कड़ी २ कोंपलें
७७	१८	क	के
७९	३०	अर्ध	अर्ध
८०	२१	मसाधि	समाधि
९०	१०	सुख	सुर
९०	१७	भागकरन	भगवान की पूजा
९१	६	समझ का	समझका
९२	१४	पखंडी	पाखंडी
९३	४	पिम्ब	बिम्ब
९३	६	धम	धर्म
९३	७	स	से
९४	७	ढर	ढेर
९४	११	राजाओ	राजाओं
९४	२२		

पत्र नं०	पंक्ति नं०	अशुद्ध	शुद्ध
९५	१	घमाण	प्रमाण
९६	१७	मुझ	मुझे
९८	२६	कमीटकी	कर्नाटकी
९९	६	नि दन	निवेदन
१०३	३	कु	कुल
१०३	१६	ॅ	हैं
१०४	७	इस्स	इस से
,,	११	माता	माता पिता
,,	,,	देती	देते
,,	१३	होता है	इत्यादि देते हैं
,,	२४	चारित्र	चारित्र का कथन है उन
१०५	२	अनक	अनेक
१०६	५	स	से,
११२	१	ज्म	जन्म
,,	१६	कथन	कथन,
,,	२५	अजिक	अर्जिका
११६	४	हमारी	हमारे
११८	१०	पुरुपो	पुरुषों
११८	१५	पद्वा	पदवी
११८	१६	क, का, दखो	के, को, देखो
१२२	७	नामिनाथ	नमिनाथ
१२२	२५	अहत	अर्हंत
१२९	४	मरभप	नरभव
१३२	१९	स्त्रियों	स्त्रियों
१३२	२१	आत्वा	आत्मा
१३२	२६	शरार	शरीर
१३३	१७	पवम	पवन
१३४	३	वि रीत	विपरीत
१३४	२८	करना	———
१३५	२२	है।	हो
१३६	६	हर गज	हरगिज
१३६	१३	मनासिव	मुनासिव
१३६	१७	दशोअप्ययं	दशोअ ्ययं
,,	१८	लयोअयं	लयोअ र्थं
,,	२८	पो०	पोस्ट

विषय-सूची ?

मन को (ॐ) में स्थिर करो।

प्रार्थना ।

नमः श्री वर्द्धमानाय निर्द्धूत कलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्प्पणायते ॥ १ ॥

सिद्धं संपूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारण मुत्तमं ।
प्रशस्त दर्शन ज्ञान चारित्र प्रति पादनं ॥ १ ॥
सुरेन्द्र मुकुटा श्लेष्टपाद पद्म सुकेसरं ।
प्रणमामि महावीरं लोक त्रितय मंगलं ॥ २ ॥

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकाल विषयं सालोकमालोकितं ;
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं साङ्गुलि ।
रागद्वेश भया मयान्तक जरा लोलत्व लोभादयो ;
नालं यत्पद लङ्घनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥ १ ॥

अर्थ—जिस प्रकार अंगुलियों सहित हस्ततल की तीन रेखा स्पष्ट देखी जाती हैं, उसी प्रकार जिसने त्रिकाल गोचर अलोक सहित समस्त त्रिलोक को प्रत्यक्षतया स्वयं देखा और राग, द्वेष, भय, रोग, मृत्यु, जरा, लोलुपता लोभ आदिक जो १८ दोष हैं, वे जिनके पद को उल्लंघन करने को असमर्थ हैं, उस "महादेव" देवों का देव—अर्हंत वीतराग सर्वज्ञ जिनेंद्र परमात्मा को" मैं वंदना (नमस्कार) करता हूं ।

प्रिय बंधुवर्ग—प्रथम हम अपने इष्टदेव परमात्मा को अञ्जुली कर नमस्कार करते हैं जो हमारे परम मंगल के कर्ता हैं।

द्वितीय—हम श्रीमान महामान्य सम्राट पंचम जार्ज (George V Emperor) को हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि जिनके राज्य में स्वतंत्रता पूर्वक धर्म साधन करते हैं

तृतीय—राजा महाराजाओं को जैसे जैपुर, जोधपुर, उदैपुर धौलपुर, ग्वालियर, अलवर, दतिया, पटयाला, हैदराबाद दक्खन, टौंक, कोटा, बूंदी, इन्दोर, अलीराजपुर, भावनगर, बरोदा, बीकानेर बशाहर, बस्तर, भोर, वनगनापल्ले, भरतपुर, भोपाल, कोचीन, २ छोटा नागपुर स्टेट, चम्बा, कच्छ, केम्बे, कुर्ग, देवास S.Br, देवास, JBr. दरभंगा, धार, गौंडाल, हिलटिपेरा, ईडर, जावरा, जम्बू, जैसलमेर, झींद, जंजीरा, झालरापाटन, खेतरी, कोल्हापुर, काश्मीर, किशनगढ़, कूंचविहार, कपूरथला, खैरपुर, काठियावाड़, मैसौर, १७ महल उड़ीसा, मनीपुर, मुरसान, नाभा, पन्ना, पालीताना, पुडकूकोट्टाई, राजगढ़, (ब्यावरा), रीवाँ, रतलाम, राजपीपला, रामपुर सीकर, साहपुरा, सिरोही. सीरमूर, सैलाना, २३ शिमला पहाड़ी रियासतें, सामंतवाड़ी, संदूर, ट्राभनकोर, टेहरी, जो समस्त १०८ बडे छोटे राज्य हैं अलावे इनके और बहुत से छोटे २ राज्य ठिकाने हैं उन सबको हम अन्तःकरण से धन्यवाद देते हैं। कि जिनके राज्य में न्याय पूर्वक धर्म साधन करते हैं हमारे ऐसे राजा महाराजाओं का शासन अटल रहे।

प्रकट हो कि ऐसी प्रार्थना और भावना हम जैनी लोगों की है और जो धर्म हम लोग साधन करते हैं उसका छठा अंश सम्राट और राजाओ को पहुँचता है यह शास्त्र प्रमाण है।

श्री दि० जैन धर्म प्रभावनी सभा के पहले अधिवेशन पर जो श्रीमान महोदय वाईसराय गवर्नर जनरल बहादुर को तार व प्लेग के समय जोपत्र सभाकी तरफसे भेजे गए उनके उत्तर हम यहाँ पाठकों के जानने के वास्ते प्रकाशित करते हैं।

द्वारकापरशाद जैन
सभापति श्री दि० जैन धर्म प्रभावनी सभा साँभर लेक

Seal of the Private Secretary's Office

Viceregal Lodge,
DELHI
7th November 1917

Dear Sir,

I am desired to thank you for your loyal message of the 4th november 1917

Yours Faithfully.

(Sd.) B. L. GAULD.

Asst Private Secretary to the Viceroy

To.

THE PRESIDENT
Digamber Jain Religion Progressive
Association, SAMBHAR

(हिन्दी अनुवाद)

प्राइवेट सेक्रेटरी के
दफ्तर की मुहर

वाईसरेगल लोज
देहली।
७ नम्बर सन् १९१७

प्रिय सज्जन !

मैं आपके राजभक्त तार तारीख ४ नोम्बर १९१७ के लिए धन्यवाद देता हूं।

आपका फर्माबरदार
(Sd) बी॰ एल, गाल्ड।
असिस्टेन्ट प्राइवेट सेक्रेटरी
"वाईसराय के"

बनाम, सभापति, दि॰ जैन धर्म प्रभावनी सभा साँभर।

JOINT WAR COMMITTEE.
Of the order of St. John's and the Red Cross SOCIETY.

Seal of The st. John Ambulance Association.	"OUR DAY" (12th December 1917)	MARK OF RED CROSS

PRESIDENT

His Excelley The Viceroy&Governor General of India
Chairman of the General Committee
His Excellency the Commander—In—Chief
President of the Executive Committee,
Her Excellency the Lady Chelmsford, C I.
Assistant Secretary Captain L C. Stevens. R. F, A.
SIMLA. TEL No 263

Hon. Treasurer	Honorary Secretary. E. J. Buck.
W J. Litster	Office of "OUR DAY" North Bank
Alliance Bank	Simla & Viceroy's Camp Delhi
of Simla.	(During Cold Weather)

Dear Sir, 877. December29th. 1917.

I am desired to thank you very much for your Letter of December 12th. 1917. Her Excellency Lady Chelmsford is much grieved that your district has been visited by plague & hopes for a Speedy return of healthy Conditions among You; and at the Same time desires me, to express to you, her Sincere thanks to the DIGAMBER JAINS for their useful and generous Subscriptions,

I am, Yours truly
(Sd) L. C. Stevens, Captain
Assistant Secretary

To the President Digamber Jain Religion Progressive Association. Po. Sambhar lake Rajputana,

हिन्दी अनुवाद।

सेंट जोंस और रेडक्रोस सोसाइटी को जोइन्ट वार कमेटी।

"हमारा दिन १२ दिसम्बर सन् १९१७"

समापति—श्रीमान् महोदय वाइसराय और गवरनर जनरलहिंद, चेअरमेन जनरल कमेटी—श्रीमान महोदय कमान्डर—इन—चीफ, समापति ऐकजेक्यूटिव कमेटी—श्रीमती महोदया लेडी चेम्सफोर्ड सी० आई०

असिस्टेन्ट सेक्रटरी—केपटिन एल. सी. स्टेमिन्स आर. एफ. ए. शिमला टेलीफोन नम्बर २६३

आनरेरी ट्रेजरर—डवल्यू—जे—लिटस्टर अलाइन्स बैंक शिमला

आनरेरी सेक्रटरी—ई. जे. बक। दफतर "हमारे दिनका" नोर्थ बैंक शिमला और वाइसराय कैम्प देहली (सर्वऋतु में)

८७७ दिसम्बर २८। १९१७

प्रिय सज्जन

मैं आपको, आपके पत्र ता० १२ दिसम्बर १९१७ के लिये बहुत धन्यवाद देता हूं; श्रीमती लेडी चेमस्फोर्ड को बहुत रंज हुआ कि तुम्हारे जिले में प्लेग फैल गई और उम्मेद करती है कि यह कष्ट जल्द निवारण हो, और साथ ही "दिगम्बर जैनियों" को उनके मुफीद और फय्याजी चन्दे के बारे में हार्दिक धन्यवाद देती हैं।

आपका दियानतदार
(SD.) एल. सी. स्टेमिंस केपटिन
असिस्टेन्ट सेक्रेटरी

बनाम समापति श्रीदिगम्बर जैन धर्म प्रभावनी सभा—सांभरलेक

॥ बंदे वीरम ॥

दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती

अयि माननीयाः सुहृदः द्वारिकाप्रसादजी जैन हाथरस सभापति जैन सभा सांभरलेक (राजपूताना) अखिल भारतबर्षीय दिगम्बर जैन—महासभायाः पंच विंशतितमे महोत्सबे श्रीवीर सम्वत २४४७ चैत्रमासस्य द्वितीय सप्ताहे कानपुर (यू० पी०) नगरे सम्भृतायां प्रथम जैन साहित्य प्रदर्शिन्यां यच्छ्रीमद्भिः परोपकारपरायणैः धर्म बुद्धया अनेक प्रकाराणि पुस्तका दीनि समाचार पत्राणि च बितरणाय द्रव्याणि प्रेषितानि, तत्कृते सबहुमान, पुरस्सरमेतत्सम्मान पत्र पत्र भवतां श्रीमतां सेवायां समर्प्यते ! कृतेनानेन साहाय्येन सुचिरं कृतज्ञता—पाशवद्धाः स्मः ।

हस्ताक्षराणि—

(SD) Champat Rai Jain (SD) दुर्गाप्रसाद

लखनऊ महोत्सवस्य सभापतेः प्रदर्शिन्याः सभापतेः

(SD) रामसरूप (SD) कन्हैयालाल

स्वागत समित्याः सभापतेः प्रदर्शिन्याः मंत्रिणः

ता० ५—२—१९२२

जैनराजधर्म तथा उसकी प्राचीनता
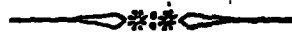
जैन धर्मसे क्षत्रिय राजाओं का कितना अधिक सम्बन्ध है यह मैं संक्षेप से प्रगट करता हूं।

जैन धर्म के प्रवर्तक २४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रति नारायण और ९ बलदेव ये त्रेशठि शलाका अर्थात पदवी धारक महान पुरुष प्रत्येक कल्पकाल में होते हैं और ये सब नियमसे वीर क्षत्रिय राजवंश के सर्वोच्च कुल में ही जन्म लेते हैं।

यों तो जैन धर्म को चारों वर्ण से लेकर तिर्यंच तक स्वशक्ति अनुसार धारण कर सकते हैं, किन्तु जैन धर्म ने विशेषता क्षत्रिय वर्ण को ही दी है, क्योंकि "जो कर्मे शूरा सो धर्मे शूरा,, अर्थात् जिसमें कर्म करने की शक्ति है वही कर्म काट सकता है। और यह गुण क्षत्रियों में प्रधानता से होता है, इसी से जैन शास्त्रोंमें यत्र तत्र वीर क्षत्रियों के ही गुणों का कथन बाहुल्यता से भरा हुआ है, जैन पुराणों को यदि वीर क्षत्रियों का इतिहास कहा जावे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर इक्ष्वाकवंशी ने नाभिराजा माता मरुदेवी के यहां स्थान अवधपुरी में जन्म लिया था- इन भगवान को कोई २ ऋषभ अवतार भी कहते हैं, कोई २ बाबा आदम भी कहते हैं इन्हों ने ही प्रथम कर्मभूमि सृष्टि की रचना की है, भगवान ऋषभदेव ने तीनों वर्ण के कर्म बतलाते हुए क्षत्रियों के असि (शस्त्र) कर्म को पहिले स्थान दिया है, शस्त्र कला का प्रचार सब से पहिले जैनियों के घर से हुआ है। जैन शब्द में ही वीरत्व भाव भरा हुआ है। जैन धर्म को शक्तिधारी आत्मा ही भले प्रकार से धारण कर सकता है।

जैन इतिहास से प्रगट है कि आजसे २४५२वर्ष पूर्व २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी, जिनका धर्म चक्रअभी तक चल रहा है विहार जिले के कुंडलपुर नगर के नाथवंशी राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे, राजा सिद्धार्थ का विवाह सिंधु देश के महाराजा चेटक की बड़ी पुत्री त्रिशल देवी (प्रियकारिणी) से हुआ था, (जिन से महावीर स्वामी का जन्म हुआ ।)

रानी त्रिशलादेवी की बहिन चेलना मगध देश की राजगृही नगरी के राजा श्रेणिक (जिनका नाम भारतीय इतिहासों में बिम्बसार लिखा है) को व्याही गई थी. उसी समय में कलिंग देश के यादववंशी राजा जितशत्रु थे जिनको राजा सिद्धार्थ की वहिन यानी महावीर स्वामी की बूआ व्याही गई थी । इस तरह से उस उस समय भारतवर्ष के बड़े २ क्षत्रिय राजा महाराजा एक न एक सम्बन्ध से जैन राजकुलों में थे । राजा चन्द्रगुप्त जैनी मौर्यवंशी क्षत्रिय था यह क्षत्रिय उपकारिणी महासभा ने माना है । जैन मित्र ता० ९—१—१६ में "राजस्थान के प्रसिद्ध राज्य कुलों में जैन धर्म" नामक लेख में मेवाड़ राज्य उदयपुर, मारवाड़ राज्य जोधपुर और जैसलमेर राज में जैन धर्म की मान्यता के ऐतिहासिक प्रमाण प्रगट किये हैं । जैन धर्म, राजाओं का ही, धर्म है उन्होंने इसे प्रगट किया है. यह समय का परिवर्तन है कि आजकल जैन धर्म के धारी कम दृष्टिगत होते हैं. ऋषभदेव भगवान का सम्वत ७६ अङ्क प्रमाण हैं जिससे जैन धर्म यानी जिन या जैन नाम भगवान ईश्वर के धर्म की प्राचीनता प्रगट होती है. हम अपने पाठकों के लाभार्थ प्रश्न-शङ्काएं और उत्तर के यहां प्रकाशित करते हैं. (कुछ अंश दि० जैन-अङ्क ७ वर्ष १२ पत्र १७ व १८ वैसाख वीर सं २४४५ महासभादि के कोटा के अधिवेशन प्रस्ताव सातवें पर समर्थन)
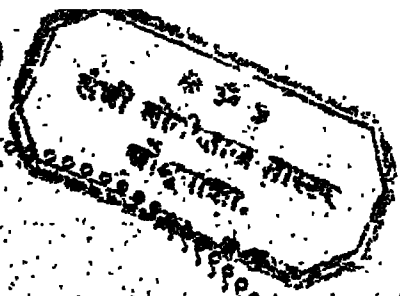
श्री वीर नि० २४५२

श्री ऋषभ निर्वाण संवत् पर शंकाएं और उनका उत्तर।

(ले० श्रीमान पं० विहारीलाल जैन, सी० टी०)
(बुलन्दशहरी अमरोहा)

(दि० जैन अङ्क-वर्ष १० वां ज्येष्ठ वीर २४४३ पत्र १८)

विदित हो कि यह लेख गत मास जनवरी के "जैन प्रचारक" में तथा गत १० जनवरी के "जैन प्रदीप" में और गत माघ मास के "दिगम्बर जैन" में प्रकाशित हुआ था जिसे पढ़कर बहुत से इतिहास प्रेमी हमारे भाइयों ने अपना हार्दिक हर्ष प्रकट किया और तीन चार महाशयों ने इस सम्वत् के विषय में कुछ शंकायें भी की हैं जिस से ज्ञात होता है कि इस लेख को बहुत से भाइयोंने ध्यान पूर्वक बड़ी रुचि से पढ़ा है और अपनी अपनी योग्य सम्मति देने का कष्ट उठाकर मेरे उत्साह को बढ़ाया है और मुझे आभारी बनाया है, जिसका धन्यवाद देने के लिए मेरे पास यथोचित शब्द नहीं हैं।

कई भाइयों ने जो कुछ शंकाएं प्रकट की हैं उनका सारांश निम्न लिखित दो भागों में विभक्त हो सकता है:—

(१) इतने बड़े ७६ अङ्क के महान सम्वत् को किस प्रकार पढ़ा जावे जब कि इकाई दहाई आदि दश शङ्ख तक कुल १९ ही अङ्क प्रमाण नियत हैं?

(२) किस जैन ग्रंथ के आधारपर और किस प्रकार यह सम्वत निकाला गया है?

उपरोक्त शंकाओं में से पहली शंका प्रकट करते हुए

हमारे कुछ आर्य समाजी भ्राताओं ने तथा कई अन्य अजैन विद्वानों ने तो अपने पूर्ण गणितज्ञ होने का यहां तक परिचय दिया है कि दश शंख से आगे गिनती का होना ही असम्भव बतला बैठे हैं ॥

इस लिए पूर्ण विद्वान सर्व विद्यानिधाम सर्वज्ञ तुल्य महाशयों से नम्रता पूर्वक निवेदन है कि वे गम्भीर दृष्टि से अपने हृदय में विचारें कि क्या गणना की भी कोई हद हो सकती है? इस प्रकार विचार दृष्टि से काम लेने पर भले प्रकार ज्ञात होगा कि गणना की कोई हद या सीमा नहीं होसकती तो भी हम सँसारी मनुष्योंको अपनी २ आवश्यकतानुकूल कुछ अँकों तक गणना नियत कर लेनी पड़ती है। अपनी २ आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर हरदेश के विद्वानों ने अपनी अपनी बुद्धि वा विचारानुसार अनेक प्रकार से गणना के कुछ न कुछ स्थानादि मानकर उनकी कल्पित संज्ञा नियत करली है, और अपने २ आवश्यकीय सर्व कार्य उसी से निकाल लेते हैं, उदाहरण के लिए कुछ विद्वानों की कल्पित इकाई दहाई आदि नीचे लिखी जाती हैं:—

(१) अर्बी फारसी की इकाई दहाई—इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, दशहज़ार, सौहज़ार। केवल ६ अंक प्रमाण।

(२) लीलावती की इकाई दहाई—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शंकु, जलधि, अन्त्य, मध्य, परार्ध। १८ अंक प्रमाण।

(३) उर्दू हिन्दी भाषा की इकाई दहाई—इकाई, दहाई, सैकड़ा, सहस्र, दश सहस्र, लक्ष, दश लक्ष, कोटि, दश कोटि, अर्ब, दश अर्ब, खर्ब, दश खर्ब, नील, दश नील, पद्म, दश पद्म, संख, दश संख। १९ अंक प्रमाण।

(४) श्री महावीराचार्य कृत गणित सार संग्रह* की इकाई दहाई—एक, दश, शत, सहस्र, दश सहस्र, लक्ष, दश लक्ष, कोटि, दश कोटि, शत कोटि, अर्बुद, न्यर्बुद, खर्व, महा खर्व, पद्म, महा पद्म, क्षोणी, महा क्षोणी, शङ्ख, महा शङ्ख, क्षित्य, महा क्षित्य, क्षोभ, महा क्षोभ। २४ अंक प्रमाण।

(५) अंग्रेजी भाषा की इकाई दहाई—इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार, दश हजार, सौ हजार, मिलियन, दश मिलियन, सौ मिलियन, हजार मिलियन, दश हजार मिलियन, सौ हजार मिलियन, बिलियन, दश बिलियन, सौ बिलियन, हजार बिलियन, दश हजार बिलियन, सौ हजार बिलियन, ट्रिलियन, दश ट्रिलियन, सौ ट्रिलियन, हजार ट्रिलियन, दश हजार ट्रिलियन, सौ हजार ट्रिलियन। २४ अंक प्रमाण। यह इकाई दहाई ऐसे ढंगसे नियत की गई है कि क्वाड्रिलियन आदि शब्दों द्वारा छह २ अंक उपरोक्त रीति से बढ़ा कर २४ अंक प्रमाण से आगे भी अधिक अंक प्रमाण बड़ी सुगमता से की जा सकती है।

उपरोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की इकाई दहाई हैं जो अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से कल्पना की हैं और जो मानने वाले जन समूह की नित्य प्रति के सब व्यवहारिक कार्यों में पड़ने वाली आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए केवल पर्याप्त (उपयुक्त) ही नहीं किंतु पर्याप्त से भी अधिक हैं।

---

* यह जैन आचार्य कृत गणित-ग्रंथ भास्कराचार्य कृत "लीलावती" से ३०० वर्ष पूर्व का है जो अंग्रेजी अनुवाद सहित "मद्रास प्रांत" सरकार की आज्ञानुसार वहीं के गवर्नमेंटी (सरकारी) यंत्रालय में प्रकाशित हो चुका है। "लीलावती" में संभवतः अधिकतर इसी का अनुकरण है। आज कल की हिंदी उर्दू में प्रचलित इकाई दहाई भी और किसी से न मिलकर अधिकांश में इसी की इकाई दहाई से मिलती जुलती है।

जैनसिद्धान्त में चूंकि तीनलोक का स्वरूप तथा उस में रहने वाले षट्द्रव्य का वर्णन इतना अधिक विस्तार पूर्वक है कि जिसका शत सहस्रांस भी इस पृथ्वी तलपर अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता इसी लिए इसी सिद्धांत का गणित भाग भी और भागों की समान बहुत ही उच्च कोटिका है।

गणित विद्या के जो अंक गणित, बीज गणित, क्षेत्र गणित आदि अनेक भेद हैं उन में से एक अंकगणित के जैन गणित में दो मुख्य विभाग हैं पहला लौकिक और दूसरा अलौकिक या लोकोत्तर। इन दो में से पहले के मान, उन्मान, अवमान, गणितमान, प्रतिमान, तत्प्रतिमानादि भेद हैं और दूसरे लोकोत्तर के द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान, और भावमान इस प्रकार ४ भेद हैं। इन चारों भेदों में से पहिले द्रव्य लोकोत्तरमान के अन्तरगत संख्या के लोकोत्तरमान और उपमालोकोत्तरमान यह दो उप भेद हैं।

इन दोनों में से संख्या लोकोत्तर मान के मूल तीन स्थान अर्थात् संख्यात, असंख्यात, और अनंत हैं और विशेष २१ स्थान हैं। तथा इसी संख्या लोकोत्तरमानको सर्वधारा, समधारा विषमधारा, कृतिधारा, अकृतिधारा, घनधारा, अघनधारा, कृति मात्रिक धारा, अकृति मात्रिक धारा, घन मात्रिक धारा, अघन मात्रिक धारा, द्विरूप वर्गधारा, द्विरूप घन धारा, और द्विरूप घनाघन धारा, यह १४ धारा हैं। दूसरे उपमा लोकोत्तर मान के पल्य, सागर सूच्यंगुल आदि ८ स्थान हैं।

इसी प्रकार क्षेत्र काल और भाव लोकोत्तर मान के अनेक भेद उप—भेदादि हैं।

इन सबका सविस्तर वर्णन उदाहरण आदि सहित जानना हो तो "वृहत् धारा परिकर्म" और "महावीर गणित सार संग्रह" आदि जैन गणित ग्रन्थों से तथा श्री त्रिलोकसार और श्री गोमट्टसारादि जैन ग्रन्थों के गणित भाग से देखें। यहां केवल इतना बताना ही अभीष्ट है कि इतना बड़ा ७६ अंक प्रमाण संख्या वाला सम्वत किस प्रकार पढ़ा जा सकता है? इस के पढ़ने के लिए कौन सी इकाई दहाई है?

ऊपर बताया जा चुका है कि "लौकिक गणित भाग" के ६ भेदों में एक चौथा भेद "गणित मान" है। इसके अन्तरगत जो इकाई दहाई है वह उपरोक्त प्रकार २४ अंक प्रमाण है।

लौकिक कार्यों में इस से अधिक तो क्या इतने अङ्कों तक की भी आवश्यकता किसी को नहीं पड़ती। परन्तु लोकोत्तर गणित भाग में अवश्य अधिक की आवश्यकता पड़ती है। जिस के लिए जैनाचार्यों ने उपरोक्त प्रकार संख्या लोकोत्तर मान में जघन्य संख्यात आदि उत्कृष्ट अनन्तानन्त पर्यन्त २१ भेदों और सर्वधारा आदि १४ धाराओं में तथा उपमा लोकोत्तरमान में पल्य, सागरादि द्वारा बड़े विस्तार के साथ आवश्यकतानुसार सब ही कुछ समझा दिया है। इनमें से संख्या लोकोत्तरमान के अन्तरगत निम्न लिखित इकाई दहाई हैं जिसकी सहायता से यदि आवश्यकता पड़े तो हम ७६ अंक तो क्या सैकड़ों सहस्रों अंक तक की संख्या को बड़ी सुगमता से पढ़ सकते हैं। वह यह हैं:—

एक, दश, शत, सहस, दश सहस, लक्ष, दश लक्ष, कोटि, दश कोटि, अर्बुद, दश अर्बुद, खर्व, दश खर्व, नील, दश नील, पद्म, दश पद्म, शङ्ख, दश शङ्ख, महाशङ्ख यहां २० अंक प्रमाण गिनती है। इस से आगे * एकट्ठी, दश एकट्ठी, शत एकट्ठी, सहस एकट्ठी, दश सहस एकट्ठी, आदि महा शङ्ख एकट्ठी तक, २० अंक प्रमाण ४० अंक तक एकट्ठी के स्थान हैं। इसी प्रकार एकट्ठी के स्थानों की तरह पल्य, सागर और कल्प के बीस बीस स्थान हैं जिस से महाशङ्ख कल्प तक एक एक अङ्क अनुक्रम से बढ़कर १०० अंक प्रमाण संख्या हो जाती है। कल्प से आगे दुकट्ठी, त्रिकट्ठी, चकट्ठी, पकट्ठी, षकट्ठी, सकट्ठी, अकट्ठी, नकट्ठी, और दकट्ठी में से प्रत्येक के सौ २ स्थान इस प्रकार हैं कि प्रथम के १०० स्थान वाचक शब्दों के आगे एकट्ठी आदि के सदृश दुकट्ठी आदि शब्द लगा दिए जाते हैं। इस प्रकार एक २ स्थान बढ़ती हुई संख्या हजार (१०००) स्थान तक पहुंच जाती है।

नोट—यहां इतना ध्यान में रखना आवश्यक है कि संख्या लोकोत्तरमान के जो उपरोक्त मूल तीन और विशेष २१ भेद हैं,

---

* २ को ६४ जगह रखकर परस्पर गुणा करने से जो १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ संख्या २० अङ्क प्रमाण आती है उसे भी एकट्ठी कहते हैं। यह संख्या २० अंक प्रमाण संख्या के जघन्य भेद से अधिक है इसी लिए इकाई दहाई के हिसाब में २१ अंक प्रमाण संख्या का नाम भी "एकट्ठी" माना गया है।

उन में संख्यात की गणना १५० अंक ❀ प्रमाण संख्या तक है इस से आगे असंख्यात की गिनती है।

इस लिए १५० अङ्क अर्थात् इकाई दहाई के १५० स्थान से आगे इकाई दहाई से गणना करने की कुछ आवश्यकता ही नहीं पड़ती और जो कुछ पड़ती है वह असंख्यात आदि के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि अन्य १८ भेदों से पूरी कर ली जाती है। और यदि किसी को विशेष जानकारी के लिए अनावश्यक होने पर भी आवश्यकता ज्ञान पड़े तो उपरोक्त सहस्र (१०००) अंक तक इकाई दहाई के स्थान लिख दिए गए हैं।

इस से आगे भी उत्पल्यांग, दुपल्यांग, त्रिपल्यांग आदि अनेक स्थान इकाई दहाई के हैं जो निःकारण लेख बढ़ जाने के भय से अनावश्यक समझ कर नहीं लिखे गए।

❀ पण्डित द्यानतरायजीकृत चर्चा शतक का पद्य नम्बर ३३ और उसकी व्याख्या देखें। इस विषय में मुझे स्वयं बड़ी संशय है, अर्थात मेरी निज सम्मति में केवल १५० अंक प्रमाण तक ही संख्यात की गिनती नहीं है क्योंकि जघन्य परीता संख्यात से एक कम तक संख्यात की गणना है और जघन्य परीता संख्यात बहुत ही बड़ी गणना का नाम है। इस लिए विद्वान महाशय पण्डित द्यानतरायजी के उपरोक्त पद्य के इस भाग का यथार्थ अर्थ शास्त्र प्रमाण सहित प्रकट करने की कृपा करें।

(लेखक)

उपरोक्त इकाई दहाई से ७६ अंक प्रमाण जो श्री ऋषभ निर्वाण सम्वत् ४१३४५२६३०३०८२०३१, ७७७४८५१२ १२१९९, ९९, ९९, ९९, ९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९, ९९९९९९९९९ ९९९९९९९९६०४५२ है वह इस प्रकार पढ़ा जा सकता है:—

४ पद्म, १३ नील, ४५ खर्व, २६ अर्ब, ३० कोटि, ३० लाख, ८२ हजार और ०३१ सागर, ७७७ शङ्ख, ४८ पद्म, ५१ नील, २१ खर्व, २१ अर्व, ९९ कोटि, ९९ लाख, ९९ हजार, ९९९ पल्य, ९९९ शङ्ख, ९९ पद्म, ९९ नील, ९९ खर्व, ९९ अर्व, ९९ कोड़, ९९ लाख, ९९ हजार, और ९९९ एकट्ठी, ९९९ शङ्ख, ९९ पद्म, ९९ नील, ९९ खर्व, ९९ अर्व, ९९ कोड़, ९९ लाख, ६० हजार, ४५२

अब रही दूसरी शंका कि किस जैन ग्रन्थ के आधार पर और किस प्रकार यह सम्वत् निकाला गया है। इस शँका के विषय में हमारे किसी २ जैन भ्राता ने बड़े आश्चर्यजनक शब्दों में लिखा है कि क्या सागरों के भी वर्ष हो सकते हैं? जैसे सागर के जल की थाह नहीं ऐसे ही सागर के वर्षों की गिनती नहीं। सागर के वर्षों की गिनती करना मानो समुद्र को चुल्लू में माप लेना और अज्ञानों को भ्रम में डाल देना है। यदि सागर के वर्षों की गिनती हो सकती तो बड़े २ जैनाचार्यों ने क्यों शास्त्रों में नहीं लिखा तथा एक योजन (दो सहस्र कोश) व्यास का और एक योजन ही गहरा गढ़ा भोगभूमि के सात दिन तक के मेढ़े के बालाग्रों से खूब भरकर और सौ सौ वर्ष के अन्तर से एक २ टुकड़ा निकालना बताकर जो एक पल्य के वर्षों की गणना आचार्यों ने बताई है वह इतने चक्कर में डाल २ किस लिए कथन को इतना बढ़ाया और अपने समयादि को खोया? बस अंकों में पल्य के वर्षों की गिनती लिख देते इत्यादि......।इसके उत्तर में शास्त्र प्रमाणों द्वारा शंका दूर करने से पहिले यह निवेदन

है कि उपरोक्त बातों को दृष्टि गोचर करते हुए हमारे भ्रातृगण जो कुछ शंका करें वह ठीक ही है। वास्तव में काल के बहुत बड़े भाग को "सागर" का नाम इसी लिए दिया गया है कि वह सागर अर्थात् समुद्र के समान महान् है। सागर के महान काल को जिस सागर (समुद्र) से उपमा जैन ग्रंथों में दी गई है वह सागर (समुद्र) भी कोई सामान्य सागर "हिंद महासागर" या "पासिफिक महासागर" आदि जैसा छोटा सा नहीं किंतु उसकी उपमा उस "लवण समुद्र" नामक महासागर से दी गई है जो एक लक्ष * महायोजन के व्यास वाले "जम्बूद्वीप" के गिर्दागिर्द दो लक्ष महायोजन चौड़ा और एक सहस्र महायोजन गहरा वलयाकार है, या इसके महत्व को भले प्रकार समझने के लिए यों जान लीजिए कि अंग्रेजी विचारानुसार आज कल की मानी हुई सारी पृथ्वी जिस में "एशिया, यूरुप, अफरीका, अमेरिका" आदि सर्व देश देशांतर और "हिंद महा सागर, पासिफिक महासागर, अटलांटिक महासागर" आदि सर्व छोटे बड़े समुद्र गर्भित हैं ऐसी बड़ी २ लाखों करोड़ों पृथ्वियाँ जिस एक ही "लवण समुद्र" में समा सकती हैं। ऐसे बड़े सागर (समुद्र) से सागर के काल को उपमा दी गई है। ऐसी अवस्था में हमारे भ्रातृगण को यह शंका कि "सागर के काल को वर्षों में गिन लेना और वह भी एक सागर को नहीं किंतु कोड़ा कोड़ि सागर महान् काल को केवल ७६ ही अंकों में गिन लेना मानो सागर को चुल्लू से नाप लेने के समान सर्वथा असम्भव है, आदि" वास्तव में यथार्थ है। परन्तु जिस समय ऐसे शंका करने वाले भ्रातृगण को यह ज्ञात होगा कि इतने अधिक बड़े "लवण समुद्र" के सम्पूर्ण जल के यदि बहुत से छोटे छोटे बिंदु सरसों के दाने को

---

* एक महायोजन दो सहस्र कोस या लगभग ४ सहस्र मील का होता है।

बराबर कर लिए जावें तो उन सर्व बिन्दुओं की संख्या ७८ अङ्क तो दूर रहे ४७ अंक से भी अधिक न बढ़ेगी, तब तो उनकी शंका मासे सी बाहर निकल कर न जाने कहाँ से कहाँ तक पहुंच जायगी। और फिर जिस समय उन्हें यह ज्ञात होगा कि गणितज्ञ के लिए गणितज्ञ भी कोई पूर्ण गणितज्ञ नहीं किंतु सामान्य ही के लिए लवण समुद्र तो क्या, उस से लाखों करोड़ों गुणे बड़े महासमुद्र के सरसों से भी शतांश सहस्रांश छोटे छोटे बिन्दुओं की गिनती बता देना एक वैसी ही साधारण सी बात है जैसे कि किसी दीवार की ईंटों की गिनती बता देना है, तब तो नहीं कहा जा सकता कि उनके चित्त की उधेड़ बुन उनके विचारों की ट्रेन को कहाँ से कहाँ पहुंचा दे।

अब रही यह बात कि यदि सागर के काल की गिनती वर्षों में निकाल लेना सम्भव होता तो बड़े २ आचार्यों ने भी निकाल कर शास्त्रों में क्यों न बता दी अथवा पल्य की संख्या को बताने के लिए महान गढ़ा खोदने और बालाग्र भरने आदि का आडम्बर क्यों रचा? इसके उत्तर में निम्न लिखित निवेदन है:—

(१) आचार्यों ने तो सब कुछ निकाल कर शास्त्रों में रख दिया (जैसा कि आगे चलकर इसी लेख से आपको ज्ञात होगा।) पर जब हम ऐसे ग्रन्थों को देखें पढ़ें और ध्यान पूर्वक समझने का प्रयत्न करें तब ही तो जानेंगे। हमारे पवित्र और सम्पूर्ण विद्याओं के भंडार रूप जैन ग्रन्थों में कोई बात कल्पित व मन गढ़न्त नहीं किंतु जो कुछ है वह सर्व वास्तविक और यथार्थ है और हर विषय को ऐसी उत्तम से उत्तम रीति से समझा दिया गया है कि योग्य रीति से ध्यान पूर्वक समझने वाले को कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती। पल्य और सागरादि का हिसाब लगा देना तो एक बहुत ही साधारण और छोटी सी बात है पर जैन ग्रन्थों में तो गणित विद्या के (अन्य विद्याओं या विषयों के समान) बड़े ही

उत्तम २ साधनादि बताकर विषम से विषम और कठिन से कठिन प्रश्नों और सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातों को इस उत्तम और सुगम रीतिसे साध कर सिद्ध कर दिखाया है कि देखकर आज कलके स्कूलोंके पढ़े बड़े २ गणितज्ञ तथा विद्वान महाशय दांतों तले उंगली दबाकर अचम्भेके समुद्रमें मग्न हो जाते हैं।

(२) एक महायोजन अर्थात दो हजार कोस या लगभग चार हजार मील व्यास का और इतना ही गहरा गोल गर्त्त खोदकर जो पल्यका हिसाब समझाया गया है। उसका एक कारण तो यह है कि पल्य शब्दका अर्थ ही खत्ती खलियान, गढ़ा या गार है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि पल्यके बड़े भारी काल का महत्व भले प्रकार चित्तपर अंकित हो सके। यदि उसके वर्षोंकी महान् संख्या को केवल अङ्कों में लिख दिया जाता (जो ४७ अंक प्रमाण ही है) तो उसके वर्षों की महान संख्या का पूर्ण और वास्तविक महत्व कदापि चित्तपर अंकित न होता। जैसा कि श्री ऋषभ निर्वाण सम्वत्का वास्तविक और पूर्ण महत्व शंका करनेवालोंके चित्तपर अंकित नहीं हुआ जो पल्यके वर्षों की संख्या से केवल लाखों गुणा बड़ा नहीं किन्तु लाखों गुणांसे भी करोड़ों गुणा बड़ा ७६ अंकों में है।

उदाहरणके लिये श्री जिनवाणी के अपुनरुक्त अक्षरों की संख्या ही को ले लीजिये, जो एक कम एकट्ठी अर्थात् १८४४६७ ४४०७३७०९५५१६१५ केवल २० अंक प्रमाण है। इन अंकोंमें बता देनेसे इसका पूर्ण महत्व हृदय पर अंकित नहीं होता। परन्तु इन अक्षरोंकी संख्याके विषयमें यदि इस प्रकार कहा जाय कि वह इतनी अधिक बड़ी है कि अगर इन सम्पूर्ण अपुनरुक्त अक्षरों को कागज पर लिखा जावे तो उनके लिखने में करोड़ों हाथियों की तोलके बराबर स्याही खर्च हो जायगी और अर्बों खर्बों, हाथियोंके वजन बराबर कागज खर्च होगा और उसकी केवल एक प्रति लिखनेमें जल्दीसे जल्दी लिखनेवाले सैकड़ों मनुष्यों

को भी करोड़ों वर्ष लगेंगे। (यह भी ध्यान रहे कि अक्षर भी कोई विचित्र प्रकारके या अनोखे नहीं किन्तु ये ही, जैसे एक श्लोक की गिन्तीमें ३२ मानकर हमारे सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मपुराणमें साढ़े छह लाख (६५,००००) के करीब हैं।) तब तो श्री जिनवाणी के अक्षरों की संख्या कितने बड़े आश्चर्यजनक रूपको धारण करके हमारी आँखों के सामने आ उपस्थित होती है। यहांतक कि हमारे बहुतसे आचार्य कहेंगे कि श्री जिनवाणीके अक्षर संख्या से बाहर हैं। उनको गिनकर अंकों में बताना मनुष्यों की शक्तिसे बाहर है। इस उदाहरणोंसे इस लेखके पाठक महोदय भले प्रकार समझ गए होंगे कि किसी वस्तुकी महान गणनाको अंकों द्वारा बतानेसे उसका पूरा असली महत्व चित्तपर अंकित नहीं होता इसी लिये पल्य के वर्षों की महान संख्याको इस रूपमें हमारी दृष्टिके सामने रखा गया है।

इस प्रकार उप—शंकाओं का थोड़ासा उत्तर दे चुकने पर अब मूल शंकाका उत्तर नीचे लिखा जाता है जिससे ज्ञात होगा कि श्री ऋषभ निर्वाण संवत् किस जैन ग्रन्थके आधार और किस प्रकार निकाला गया है और कैसे यह पूर्णतया शुद्ध और ठीक है:—

(१) एक व्यवहार पल्यके रोमों की संख्या ४१३४५२६, ३०३०८२०३१,७७७४९५१२१९२,२००००००००,०००००००००, अर्थात् २७ अंक और १८ शून्य कुल ४५ अंक प्रमाण है।

शास्त्र प्रमाण—१. श्री गोमट्टसारजीकी श्रीमान् पं० टोडरमलजी कृत टीका जीवकांड अधिकार २ के आरम्भ में अलौकिक गणित।

(२) श्री गोमट्टसार, कर्मकांडकी श्रीमान् पं० मनोहरलालजी कृत छोटी टीकाकी भूमिका।

(३) श्री तत्वार्थ सूत्रजीकी अर्थ प्रकाशिका टीका अध्याय ३ सूत्र ३८ की व्याख्या।

(४) श्री तत्वार्थ सूत्रजीकी सर्वार्थसिद्धि भाषाटीका, अध्याय ३, सूत्र २७ की व्याख्या।

(५) श्रीमान् पं० द्यानतरायजीकृत चर्चाशतकका पद्य ३३ और उसकी व्याख्या।

(६) श्री हरिवंश पुराण भाषा टीका का सर्ग ७।

(७) श्री त्रिलोकसारजीकी भाषा टीका श्रीमान पं टोडरमल जी कृतका गणित भाग इत्यादि देखें।

(२) व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या को १०० से गुणा करने से जो संख्या प्राप्त होगी वह एक पल्योपम काल के वर्षों की संख्या है जिस में उपरोक्त २७ अङ्क और २० शून्य सर्व ४७ अंक हैं।

शास्त्र प्रमाण—उपरोक्त ग्रन्थ।

नोट—जिसे पल्य अर्थात खत्ती या गढ़े से उपमा दी जाय उसे "पल्योपम" कहते हैं। इस लिए जिसे हिंदी भाषा ग्रंथों में बहुधा पल्यकाल बोला जाता है वह वास्तव में पल्योपम काल है पल्य तो केवल गढ़े ही का नाम है जिसे कालादि की गणना करने के लिए तीन भेदों अर्थात व्यवहार पल्य, उद्धार पल्य, और अद्धा पल्य में विभाजित किया गया है और जिन से यथा योग्य स्थलों पर कालादि की बड़ी गणनाओं में काम लिया जाता है।

(३) दस कोड़ा कोड़ी (१० करोड़ का करोड़ गुणा अर्थात एक पद्मपल्योपम का एक सागरोपम(जिसे लवण सागर

से उपमा दी गई है) होता है । पल्योपम के उपरोक्त वर्षों की संख्या को दश कोड़ाकोड़ी में गुणा करने से उपरोक्त २७ अङ्क और ३५ शून्य सर्व ६२ अंक हो जाते हैं जो एक सागरोपम-काल के वर्षों की संख्या है।

शास्त्र प्रमाण—उपरोक्त ग्रन्थ ।

नोट—जहां जहां बड़ी बड़ी आयु वाले मनुष्य या देव देवी आदि की केवल एक जन्म सम्बन्धी आयु की स्थिति बताई गई है वह सब इसी पल्योपम और सागरोपम से है न कि किसी प्रकार के पल्य या सागर से जो कि वास्तव में कालादि के परिमाण सूचक नहीं है किंतु कालादि की महान गणना जानने के लिए उपमा मात्र सहायक हैं।। शास्त्र प्रमाण श्री तत्वार्थसूत्र, अध्याय ३, मूलसूत्र ६, २९, ३८, अध्याय ४ मूलसूत्र २८, २९, ३३, ३९, ४२, अध्याय ८ मूलसूत्र १४, १७ इत्यादि ।

इन सूत्रों के टीकाकारोंने पल्य और पल्योपम तथा सागर और सागरोपम के वास्तविक अन्तर पर विशेष ध्यान न देकर पल्योपम के स्थान में पल्य और सागरोपम के स्थान में सागर लिखा है जो एक प्रकार की अशुद्धि है ।

(४) एक कल्पकाल २० कोड़ा कोड़ी सागरोपम का होता है जिस के एक भाग अवसर्पणी का चतुर्थकाल (जिस में वर्तमान चौबीसी हुई) ४२ सहस्र वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमका है। इसी लिए एक सागरोपम के वर्षों की उपरोक्त संख्या को एक कोड़ा कोड़ी में गुणा करने से उपरोक्त २७ अङ्क और ४९ शून्य कुल ७६ अंक प्रमाण संख्या एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम

के वर्षों की प्राप्ति हो जाती है। इस संख्या में से ४२ सहस्र वर्ष घटा देने से जो संख्या प्राप्त होगी वह पूर्ण चतुर्थ काल के वर्षों की संख्या है जो ७६ अंक प्रमाण ही है।

(५) श्री ऋषभ देव जी महाराज के निर्वाण चतुर्थ काल के आरम्भ में ३ वर्ष साढ़े आठ मास पूर्व हुआ और श्री महावीर जी का निर्वाण पञ्चम काल के आरम्भसे इतने ही काल अर्थात् ३वर्ष ८॥ माह पूर्व हुआ। इस लिए प्रथम तीर्थंकर के निर्वाण काल से अंतिम तीर्थंकर के निर्वाण काल तक का अंतर ठीक उतना ही है जितना पूर्ण चौथा काल।

शास्त्र प्रमाण—श्री पद्म पुराण पर्व २० जहां चौथे काल का वर्णन करते हुए २४ तीर्थंकरों के अंतराल कालका कथन पूर्ण किया है। तथा हरिवंशपुराण सर्ग ६० श्लोक ४८६, ४८७ जहां २४ तीर्थं-करों के अंतराल कालादि के कथन को पूर्ण कर के श्री महावीर स्वामी के ११ गणधरों की आयु का कथन है उस से आगे।

(६) अब यदि प्रथम तीर्थंकर के निर्वाण से अंतिम के निर्वाण तक के अंतराल काल अर्थात पूर्ण चतुर्थ काल के वर्षों की संख्या में श्री वीर नि० सम्वत् जोड़ दें तो हमारा अभीष्ट श्री ऋषभ निर्वाण सम्वत् प्राप्त हो जायगा जिस के वर्षों की संख्या वही है जो कई जैन समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है।

नोट—जिन महाशयों को यह भी जानना अभीष्ट हो कि इतने अधिक बड़े पल्य में भरे गए भोग भूमि के ७ दिन तक की वयवाले मेंढ़े के बालक के बहुत ही छोटे छोटे रोमों या बालाग्रों की उपरोक्त संख्या ४५ अंक प्रमाण किस प्रकार निकाली गई है वह पूर्वोक्त ग्रंथों के इसी विषय सम्बंधी कथन को ध्यान पूर्वक पढ़ें।

श्री अर्थप्रकाशिका तथा श्री गोमट्टसारादि में सब कुछ मौजूद है। यदि तब भी समझ में न आवे तो मुझ से पत्र व्यवहार करें। तथा किसी प्रकार की शंका उपरोक्त लेख में हो तो वह भी प्रकट करें। किसी जैन समाचार पत्र द्वारा भले प्रकार समझा देने का प्रयत्न किया जायगा। किमधिकम्।

नोट—इस लेख में यह बताया गया है कि महावीराचार्य कृत गणितसार संग्रह में २४ अंक प्रमाण की गिनती है और इस से अधिक की गिनती नहीं देखने में आती। परंतु हमने 'दिगम्बर जैन' वर्ष ८, अंक २ वीर सम्वत २४४१ में "अंकावली" नामक लेख में ७७ अंक प्रमाण की गिनती और नाम बताये हैं जो इस प्रकार हैं:—

एकं, दयं, सयं, सहस्र, दहसहस्र, लखं, दहलखं, कोडं, दहकोडं, अडवं, दहअडवं, खडवं, दहखडवं, निखरवं, दहनिखरवं, सोरजं, दहसोरजं, पद्मं, दहपद्मं, पारघं, दहपारघं, संखं, दहसंखं, रतनं, दहरतन, नखडं, दहनखडं, सुघटं, दहसुघटं, गामं, दहगामं, प्रसटं, दहप्रसटं, हारं, दहहारं, मनं, दहमन, वजरं, दहवजरं, संकं, दहसंकं, सेकं, दहसेकं, असंखों, दहअसंखों, नीलं, दहनीलं, पारं, दहपारं, कणं, दहकणं, खीरं, दहखीरं, परवं, दहपरवं, घलं, दहघलं।

यह गिनती के नाम हमने एक हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक से प्रकट किए थे। इस प्रकार इस से ज्यादे की गिनती के नाम भी शायद किसी और प्राचीन ग्रंथ में मिल जाना सम्भव है जिस से कि यह ऋषभनिर्वाण सम्वत् के ७६ अंक सुगमता से गिने जासकें।

संपादक।।

यह रिषभ संवत अंग्रेजी में इस प्रकार पढ़ा जाता है।

4134526303082031777495121919999999999999999999999999999999999999999960452

卐

(लेखक—खुन्नीलाल जैन)

(By Khunni Lal Jain)

B.Sc. (ENG) F. C. I. (BIR)

Mechanical Electrical Structure Engineers

HATHRAS Dt. ALIGARH U. P.

Shri Rishabh Jain Year.

Four thousand one hundred and thirtyfour dodecallion, Five hundred twentysix thousand, three hundred and three monodecallion, eightytwo thousand and thirtyone decallion, seven hundred seventyseven thousand, four hundred and ninetyfive nonellian, one hundred twentyone thousand, nine hundred and nineteen octallion, nine hundred ninetynine thousand, nine hundred and ninetynine heptallion, nine hundred ninetynine thousand, nine hundred and ninetynine hexallion, nine hundred ninetynine thousand, nine hundred and ninetynine pentallion, nine hundred ninetynine thousand, nine hundred and ninetynine quadrillion, nine hundred ninetynine thousand nine hundred and ninetynine trillion, nine hundred

ninetynine thousand nine hundred and ninetynine billion, nine hundred ninetynine thousand, nine hundred and ninetynine million, nine hundred sixty thousand, four hundred and fifty two.

(Shri Mahavir Jain Year, Two thousand four hundred and fiftytwo).

॥ मंगलाचरणम् ॥

वंदौ बानी भगवती, विमल जोत जग मांहि ।
भ्रम ताप जासौं मिटे, भवि सरोज विकसांहि ॥
गौतम गुरु के पद कमल, हृदय सरोवर आन ।
नमों नमों नित भावसों, करि अष्टांग विधान ॥

प्रिय सज्जनो व बहिनो ! आज इस बात के जानने की अति आवश्यकता है कि हमारे देव गुरु कौन हैं और उनका धर्मोपदेश क्या है ? इस हेतु जो वचन जैसे महान पर्वत में राई समान जिन आगमों व विद्वानों द्वारा मैंने श्रवण किया है उसका अति संक्षेप कुछ यहां प्रगट करता हूं। आशा है कि मेरी त्रुटियों पर क्षमारूपी

भाव रखते हुए गुण गृहण करेंगे जैसे हँस मिश्रित दूध—जल में से दूध को पीलेता है और जल को छोड़ देता है।

हम को नित्य षट कर्म करने चाहिए। यानी (१) देव पूजा (२) गुरु स्तवन (३) स्वाध्याय (४) संयम (५) तप और (६) दान। इन का पूरा २ वर्णन जिन आगमों से मालूम करना चाहिए। कुछ संक्षेप से आगे लिखता हूं।

यह जीव अनादि काल से सँसार के दुःखों से कष्ट उठा रहा है। और इसके साथ क्रोध मान माया लोभादि कषायों का इस तरह सम्बन्ध हो रहा है जिस तरह कि "तिल में तेल" इस आत्मा के गुण का प्रकाश करना, निर्जरा और सम्वर द्वारा, यही मुख्य कर्तव्य है। जीव रास एक है जैसे आम शब्द एक है। परंतु इस की किस्में कई कई प्रकार की हैं जैसे बम्बई, मालदई, तोतापरी इत्यादि इसी प्रकार हर जीव की आत्मा भिन्न २ हैं और शक्ति बराबर है मगर वह शक्ति कर्म अपेक्षा देख कर प्रथक प्रथक है। इस लिए पुद्गल गृहण भिन्न २ है। जैसे मनुष्य, देव, तिर्यंच नारकी इत्यादि।

"सम्वर" का अर्थ आश्रव का रोकना यानी कर्मों को न आने देना और "निर्जरा" का अर्थ लगे हुए कर्मों को दूर करना जैसे एक रत्नमई पटिया कूड़े से दबी हुई है। उस पर कूड़ा न गिरने देना नाम सम्वर है और जो कूड़ा पड़ा हुआ उसको साफ कर देना नाम निर्जरा है।

इसी तरह इस जीव का गुण स्वभाविक केवल ज्ञान है सो सुनिमित्त द्वारा प्रगट हो सकता है। इस जीव का गृह मोक्ष है कर्मों वश सँसार में भ्रमण कर रहा है। इस आत्मा की तीन अवस्था होती हैं, यानी बहिरात्म, अन्तरात्म और परमात्म।

जिसकी आत्मा पर द्रव्य में ममत्व करती है जैसे यह मेरा यह तेरा इत्यादि, यानी अज्ञान अवस्था उस को बहिरात्म कहते हैं। जब जीव इस अवस्था को छोड़ ज्ञानरस पीता हुआ निजानंद रस में आता है तब इस की हालत सांसारियों के निकट आश्चर्य जनक

हो जाती है और सांसारी विभूत प्रिय नहीं लगती है। यहांतक कि गृहस्थ अवस्था को त्याग देता है और अपनी आत्मा में लीन हो जाता है। यानी—

"एका की निस्पृह शांतः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदाहं संभविष्यामि कर्मानिर्मूलनक्षमः॥"

इस पवित्र इच्छा को अपने शुद्धान्तः—करण में रखते हुए सांसारिक सुखोत्पादक सार्वभौमिक सम्पत्ति को लात मार कर निर्जन वन में पर्वत की कन्दराओं का आश्रय लिया करते हैं और संसार महीरुहको निर्मूल कर स्वशुद्धात्मस्वरूप मोक्ष नगर का मार्ग सरल किया करते हैं।

सो ऐसी अवस्था को अंतरात्म या महात्मा कहते हैं। घोर तपो और ज्ञान द्वारा जब जीवआगे बढ़ता है तो घातिया (मोहनीय, दर्शनावर्णीय, ज्ञानावर्णीय और अंतराय) कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान उपार्जन कर "परमातम" अवस्था में पहुंच जाता है। यानी ईश्वर परमात्मा, सर्वज्ञ हितोपदेशक वीतराग हो जाता है। जिनकी स्वमेव निरअक्षरीय वाणी दिव्य ध्वनि चांदनी सी वर्षा करती है, जैसे स्वमेव जल बरसता है। उनको तीन लोक दर्पण वत ज्ञान में झलकता है। आयू कर्म (अघातीय कर्म) के पूर्ण होने पर सिद्ध हो जाते हैं यानी तीन लोक के शिखर पर जा विराजते हैं। इस जीव का स्वभाव उर्द्ध गमन है कर्मों से रुक कर संसार में भटकता है जब कर्मों को क्षय कर देता है तब इस को रोकने वाला कोई नहीं। आवागमन मिट गया इस लिए पुद्गल रहित हो गए। निरञ्जन निराकार पद गृहण हो गया। संसारी जीव इन को सहस्रों नामों से पुकार कर अपना कर्म रूपी मैल धोते हैं। जैसे खटाई द्वारा सुवर्ण धोया जाता है। उन नामों को मंत्र भी कहते हैं। उस में अचिन्त्य शक्ति है यानी God (गोड) खुदा, परमात्मा, ईश्वर, सर्वज्ञ केवल ज्ञानी, ब्रह्मा, अर्हंत, सिद्ध, जिनेंद्र, जिन भगवान, जिन राज, वीतराग, तीर्थंकर, इत्यादि इस तरह वह हमारा हितकारी है। उनका धर्मोपदेश हम

को मोक्ष मार्ग का दर्शाने वाला है। उनका मार्ग हम भी प्राप्त कर सक्ते हैं। यह मार्ग तीन रत्नों द्वारा यानी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र अङ्गरेजी में "Right Belief, Right Knowledge and Right Conduct" और उर्दू में "यकीन सादिक, इल्म सादिक और अमल सादिक कहते हैं" प्राप्त हो सक्ता है। ऐसा ईश्वर देव, देवों का देव-महादेव, परमात्मा खुदा गोड १८ दोष रहित होना चाहिए। वे दोष यह हैं जन्म Birth, जरा Oldage, रोग Disease, मरण Death, क्षुधा Hunger, तृष्णा Thirst, निद्रा Sleep, स्वेद Sweat, अरति Pain, खेद Restlessness, चिंता Anxiety, मोह Delusion, विस्मय Wonder, मद Pride, भय Fear, शोक Sorrow, राग Attachment, द्वेष Repulsion—

भावार्थ, सच्चा ईश्वर वही है, जो:—

न द्वेषी हो न रागी हो, सदानन्द वीतरागी हो।
वह सब विषयों का त्यागी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥टेक॥
न खुद घट घट में जाता हो, मगर घट घट का ज्ञाता हो।
वह सत् उपदेश दाता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥
न करता हो न हरता हो, नहीं अवतार धरता हो।
मारता हो न मरता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥

ज्ञान के नूर[1]* से पुरनूर हो, जिसका नहीं सानी[2]।
सरासर नूर नूरानी, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥

न क्रोधी हो न कामी हो, न दुश्मन हो न हामी[3] हो॥
वह सारे जगका स्वामी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥

वह जाते पाक हो, दुनियां के झगड़ों से मुबर्रा[4] हो।
आलिमुलग़ैब[5] हो बेऐब, ईश्वर हो तो ऐसा हो॥

दयामय हो शांतिरस हो, परम वैराग्यमुद्रा हो।
न जाबिर हो न काहिर हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥
निरञ्जन निर्विकारी हो, निजानन्दरसविहारी हो।
सदा कल्याणकारी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥
न जगजंजाल रचता हो, करम फल का न दाता हो।
यह सब बातों का ज्ञाता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥
वह सच्चिदानन्दरूपी हो, ज्ञानमय शिव सरूपी हो।
आप कल्याणरूपी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥
जिस ईश्वर के ध्यान सेती; बने ईश्वर कहैं न्यामत।
वही ईश्वर हमारा है; जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥

---

* १ प्रकाश। २ बराबर का। ३ सहायक। ४ रहित। ५ सर्वज्ञ; आगे पीछे की छिपी हुई बातों को जानने वाला। ६ जुल्म करने वाला, अन्यायी। ७ क्रोधी, दुष्ट, अन्यायी।

परमात्मा कर्मों रहित निर्दोष है हम संसारी कर्मों सहित दोषी हैं. हम को ईश्वर की श्रेष्ठ भक्ति और गुणानुवाद करना चाहिए। जिस भवन में उनकी यथावत प्रतिमा विराजमान की जाती है उसको "चैत्यालय" कहते हैं आज कल अधिकतर जिन मंदिर या जैन मँदिर भी कहते हैं। जो भगवान परमात्मा के मार्ग पर चलते हैं उनको जैनी या श्रावक कहते हैं। ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा के धर्मोपदेश वाणी को जिन वाणी, जिनवाणी माता, सरस्वती, शारदा और श्रुत कहते हैं। क्यों कि जैसे माता बुद्धहीन बालक को सँसारी मार्ग में मिष्ट वचनो द्वारा प्रवल युवा कर देती है उसी तरह यह ज़िन वाणी सँसारी जीवों को धर्म मार्ग में निपुण कर अक्षय पद दिला देती है। हम बारम्बार ऐसे निर्दोष देव और जिनवाणी को नमस्कार करते हैं। हम को नित्य ऐसे मंदिर में जाकर जिनेंद्र दर्शन भकित व पूजा करना चाहिए। पूजा कई प्रकार से की जाती है:-

भक्तामर, दर्शन पाठादि से ईश्वर भक्ति का एक नमूना मालुम हो सकता है भक्तिवश हृदय भीज कर रोमांच खड़े हो जाते हैं। जैनियों को यह न समझना चाहिए कि जैन धर्म हमारे कुल की दौलत है यह जिनेन्द्र धर्म जीव मात्र का धर्म है। जिन या जैन से भगवान का अर्थ है कि जिन्होंने कर्म शत्रुओं को जीत लिया है इस लिए उस धर्म को जैन धर्म कहते हैं। यह जैन धर्म "दिगम्बर" से प्रगट हुआ है यानी जिस गुरु के दिशाएँ ही वस्त्र हों यानी निर्ग्रन्थ। जैन धर्म पक्ष रहित वीतरागता लिए हुए हैं। हमको चार रत्नों की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए क्यों कि हमको हमारे श्रद्धान मुताबिक फल मिलेगा। यथावत श्रद्धान करने वाले को सम्यग्दृष्टी (True believer) कहते हैं।

सांचो देव सोई जामें दोष को न लेश कोई।
वही गुरु जाके उर काहू की न चाह है॥
सही धर्म वही जहां करुना प्रधान कही।
ग्रन्थ जहां आदि अन्त एक सौ निवाह है॥
यही जग रत्न चार इन को परख यार।
सांचे लेहु झूठे डार नर भौ को लाह है॥
मानुष विवेक विना पशु की समान गिना।
तातें यह ठीक बात पारनी सलाह है॥

और सुनिये—

पंडित भूदरदास जी का षट कर्मोपदेश।

अघ अंधेर आदित्य नित्य स्वाध्याय करिज्जै।
सोमोपम संसार तापहर तप करलिज्जै॥

जिनवर पूजा नेम करो नित मंगल दायक ।
बुध संजम आदरहु धरहु चित श्री गुरु पायन ॥
निज वित समान अभिमान विन सुकर सुपत्तहि दान कर ।
यों सुनि सुधर्म षट कर्म भज नरभो लाहो लेहु नर ॥

अर्थात पाप रूपी अन्धेरे के दूर करने को सूर्य के प्रकाश समान जो स्वाध्याय सो नित्य कर । संसार के दुखों को दूर करने को चन्द्र समान शीतल करने वाला जो तप सो कर मंगल की देने वाली जो भगवान की पूजा उसको नित्य करने का नियम कर । हे बुद्धिमान ! श्रीगुरु के चरणों में चित देकर संयम का ग्रहण कर । अपनी वित्त समान अभिमान छोड़कर सुख का करने वाला सुपात्र को दान दे । यह जो षट कर्म श्रेष्ठ धर्म काहिये जिन शासन में कहे हैं उनको ग्रहण कर के मनुष्य जन्म सुफल कर ॥

तुम लोगों को परमात्मा ईश्वर जिनेंद्र के नित्य दर्शन करना चाहिए । दर्शन कैसा है सो "दर्शन स्तोत्र से यहां प्रगट करते हैं" ।

अथ दर्शन स्तोत्रम ।

दर्शनं देव देवस्य दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥ १ ॥
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च ।
न चिरं तिष्ठति पापं छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥ २ ॥

वीतराग मुखं दृष्ट्वा पद्म राग सम प्रभम् ॥
नैक जन्म कृतं पापं दर्शनेन विनश्यति ॥ ३ ॥
दर्शनं जिन सूर्य्यस्य संसार ध्वान्तनाशनम् ।
बोधनं चित्तपद्मस्य समस्तार्थ प्रकाशनम् ॥ ४ ॥
दर्शनं जिनचन्द्रस्य सद्धर्म्मामृतवर्षणम् ।
जन्म दाह विनाशाय वर्द्धनं सुख वारिधेः ॥ ५ ॥
जीवादितत्त्व प्रति पाद काय सम्यक्त मुख्याष्ट गुणाश्रयाय ।
प्रशांत रूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ६ ॥
चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने ।
परमात्म प्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥ ७ ॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ८ ॥
नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ ९ ॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु भवे भवे ॥ १० ॥
जिन धर्म्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि ।
शांत चित्तो दरिद्रोपि जिन धर्म्मानुवासितः ॥ ११ ॥
जन्म जन्म कृतं पापं जन्म कोटि भिरार्जितम् ।
जन्म मृत्यु जरातङ्क हन्यते जिनवन्दनात् ॥ १२ ॥
अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य देव त्वदीयचरणाम्बुज वीक्षणेन ।
अद्यत्रिलोक तिलक प्रति भासते मे संसार वारिधिरयंचुलुक प्रमाणम् ॥
अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोहं धर्म्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १४ ॥

जब चिन्तू तब सहस्र फल लक्खा गमन करे।
कोड़ा कोड़ि अनन्त फल तब जिनवर दिठे ॥ १५ ॥
॥ इति दर्शनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जिन दर्शन से अचिंत्य लाभ और फल हैं जिनेंद्र भगवान की मुद्रा शांत रूप पद्मासन व खडगासन आत्मलीन होती है। श्री मूलाचार जी ग्रंथ गाथा ५०२ पत्र २०७ में वर्णन है।

वीतराग जिनराज का दर्शन कठिन नवीन।
तिनका निःफल जन्म है जे दर्शन हीन ॥

दर्शन से कई प्रकार के लाभ के, यथावत भगवत स्वरूप मालुम हो जाता है। देखिए प्राचीन समय में या अब भी कहीं कहीं या तीर्थ क्षेत्रों में आपने देखा या सुना होगा कि जिन मुद्रा जैन मँदिर के शिखर के चारों तरफ आलय में स्थापित की जाया करती थी या मौजूद हैं। यह अब भी नियम है कि जैन मंदिर के चारों तरफ आलय बनाये जाते हैं। वह सब इसी वास्ते कि जैन धर्म जीव मात्र का धर्म है ताकि चांडालादि भी अपना कल्याण कर सके परंतु आज कल यह प्रचार बंद सा होता जाता है।

ऐसे महा पवित्र (चैत्यालय) जिन या जैन मंदिर में स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन प्रमाद अभिमान रहित विनय सहित जाना चाहिए। रोगी हाथ पैर धो वस्त्र बदल कर जा सकता है परंतु शराब पीकर, वैश्या तथा स्त्री प्रसंगादि अभिमान सहित, विनय रहित वाला जैन मँदिर में प्रवेश न करें क्यों कि ऐसी हालतों से पाप वज्र मई हो जाता है और योग्य हालत से जाने में पाप कर्म छूट जाता है आपने सुना भी होगा कि बहुत से हमारे अजैन भाई भी यों कहते हैं कि "जैन मंदिर में नहीं जाना, चाहे हस्ती के नीचे दब जाना" सो हे भाइयो यह कहावत तो ठीक है मगर किस हालत में नहीं जाना सो इसका विचार उपर्युक्त वाक्यों से कर लेना। दूसरा दृष्टांत यह है कि जब तक हम धर्म का स्वरूप कहते चले जावेंगे, उस वक्त तक सब मानने को तय्यार होंगे परंतु जहाँ "जैन धर्म" शब्द कह दिया जावे, बस बहुत से एक दम

पक्ष ग्रहण कर जाते हैं। इस लिए यह कथन यहां पर इतना खुलासा लिखा गया है। हम आशा करते हैं कि पण्डित बुद्धिमान चतुर सज्जन निर्पक्ष न्याय सहित विचार करेंगे। जैन मंदिर में अयोग्य हालतों और कुभावों से जाना मने इस वास्ते किया गया है कि जिस धर्म में सर्वोत्कृष्ट पद देने की शक्ति है उसके अविनय से उलटी हालत होने की सम्भावना है।

देखिए श्रीमान वीरचन्द्र आर गांधी B. A. M. R, A. S. The Jain delegate to the Parliament of Religions; chicago. U. S. A. (1893) जैन फिलोस्पी में लिखते हैं— (Page 77)

There is a verse of two lines, the meaning of the second being connected with the first & these two lines must be interpreted together. So is the Case with this expression. the real fact is that the Brahmins who had been at certain epochs in the history of india inimical to the Jains *got* hold of the second line only which they interpreted to mean "Even if a person is going to be killed by an elephant he ought not to go into the Jain temple" while if the meaning is taken with the first line, it is this:— "when a person has killed an animal, or any living thing or has returned from an immoral house or a visious place, or if he has drank wine, then he ought not to pollute the Jain temple even if he is followed by an elephant."

जैन मंदिर में हम को निम्न लिखित ८४ आसादना दोष नहीं लगाना चाहिए,हर जैनी भाइयोंको यह कण्ठस्थ करलेनाचाहिए

चैत्यालय (जैन मँदिर) की स्थापना विषय तथा उसका कितनाबड़ा भारी महत्व है सो श्री पद्मपुराण (जैन रामायण) पर्व ८२ सप्त ऋषियों का उपदेश जो श्री गुरु के स्वरूप कथन के आगे लिखा है, मालुम करना।

८४ आसादना दोष श्री जिन मंदिर में नहीं लगाना।

निम्न लिखित ८४ आसादना टालकर सर्वत्र सर्व ही जैन समाजको जिन मंदिर तथा जिन मंडपमें वर्ताव करना योग्य है, विरुद्ध वर्ताव करना पाप बन्धका कारण है:—

१ मन्दिरमें खांसी कफ खखारना नहीं।
२ मल मूत्र वायु उसारना नहीं।
३ वमन करना तथा कुरला करना नहीं।
४ आंख, नाक, कानका मैल निकालना नहीं।
५ पसीना तथा शरीर का मैल डालना नहीं।
६ हाथ पांव के नख तोड़ना काटना नहीं।
७ फस्त खुलाना नहीं; घाव पट्टी करना नहीं।
८ हाथ पांव शरीर दबाना नहीं।
९ तैल मर्दन तथा सुगन्ध अतर लगाना नहीं।
१० पांव पसारना तथा गुह्य अङ्गादि दिखाना नहीं।
११ पांव पर पांव धरना तथा ऊंटके आसन बैठना नहीं।
१२ उंगली चटकाना तथा फोड़की खाल चोटना नहीं।
१३ आलस्य तोड़ना, जंभाई, छींक लेना नहीं।
१४ भीतके सहारे बैठना तथा खंभ सहारे बैठना नहीं।
१५ शयन करना तथा बैठे हुये ऊंघना नहीं।
१६ स्नान उबटन तेल कंघा करना नहीं।
१७ गर्मीसे पंखा तथा रूमालसे हवा लेना नहीं।
१८ जाड़ोंमें आगसे तापना नहीं।
१९ कपड़ा धोती आदि धोना सुखाना नहीं।
२० अधो अंगमें खाज खुजाना नहीं।

२१ दात मंजन तथा दांतोंमें सींक करना नहीं ।
२२ पटा कुर्सी खाट पलंग पर बैठना नहीं ।
२३ गद्दी तकिया लगाके बैठना नहीं ।
२४ ऊंचे आसन बैठके शास्त्र वाचना नहीं ।
२५ चमर, क्षत्र अपने ऊपर कराना नहीं ।
२६ शस्त्र वांधके कमर बांधके आना नहीं ।
२७ घरसे कोई सवारी पै बैठके आना नहीं ।
२८ जूता, खडाऊं मोजा तथा ऊनके वस्त्र पहनके आना नहीं ।
२९ नङ्गे सिर मंदिरमें बैठना नहीं ।
३० शृंगार विलेपन तिलकादि करना नहीं ।
३१ दर्पण मुख देखना केश तिलक संवारना नहीं ।
३२ डाढी मूछोंपर ताव देना नहीं ।
३३ हजामत तथा केशलोंच करना नहीं ।
३४ पान, तमाखू, बीडी वगैरह खाना नहीं ।
३५ खाद्य इलायची, लोंग सुपारी आदि खाना नहीं ।
३६ भांग माजूमका नशा कर मंदिरमें आना नहीं ।
३७ फूलोंकी माला कलगी हार पहरके आना नहीं ।
३८ पगडी साफा मंदिरमें बैठके बांधना नहीं ।
३९ भोजन पान मंदिरमें करना कराना नहीं ।
४० औषध चूर्ण गोली आदि मंदिरमें खाना नहीं ।
४१ रात्रिको पूजन तथा फलादि चढाना नहीं ।
४२ जलकेल होली मंदिरमें खेलना नहीं ।
४३ व्याह सगाई नेग कारजकी चर्चा करना नहीं ।
४४ सगे सम्वधी मित्रादिक सूं मिलनी भेट लेनी देनी नहीं ।
४५ कुटुम्ब सुश्रूषा आव आदर करना नहीं ।

४६ जुहार मुजरा, वंदगी, राम राम, करना नहीं।
४७ राजा तथा सेठ किसीका सन्मान करना कराना नहीं।
४८ बिरादरी सम्बंधी पंचायत मंदिरमें करना नहीं।
४९ लड़ाई झगड़ा विसम्बाद क्लेश करना नहीं।
५० गाली भंड वचन कटुक बचन कहना नहीं।
५१ झूठ गर्हित सावद्य अप्रिय वचन कहना नहीं।
५२ लाठी मुष्ठि शस्त्र प्रहार करना नहीं।
५३ हांसी ठठ्ठा मसकरी छेडछाड करना नहीं।
५४ रोना विसूरना हिचकी लेना करना नहीं।
५५ स्त्री कथा तथा कामभोगकी वार्त्ता करना नहीं।
५६ चौपड शतरंज गंजफा मंदिरमें खेलना नहीं।
५७ राजादिकके भयसू मंदिरमें छुपना नहीं।
५८ ग्रहकार्य लौकिक कार्यकी वार्त्ता करनी नहीं।
५९ धन उपार्जनके व्यापारकी वार्त्ता करनी नहीं।
६० वैद्यक ज्योतिष नाडी आदि मंदिर में देखना नहीं।
६१ दुष्ट संकल्प विकल्प मंदिरमें करना नहीं।
६२ पच्चीस प्रकारकी विकथा करनी नहीं।
६३ देन लेन आदि कार्यकी सौगंध खाना नहीं।
६४ चमडा हाड दांत सीप सङ्ख कौडी नख लाना नहीं तथा सीप हड्डीके बटन लगाकर तथा मखमल सर्ज के वस्त्र पहन या दुशाला लोई ओडकर व फेल्टकेप(टोपी)पहन आना नहीं।
६५ हरित फलफूल सचित वस्तु मंदिरमें लाना नहीं।
६६ उधारका लेन देन किसीसे करना नहीं।
६७ रिसवत घूंस वैगरह लेना देना नहीं।
६८ रत्न रुपया वस्त्रादि कोई चीज मंदिरमें परखना नहीं।

६९ घरका द्रव्य तथा कोई वस्तु मँदिर में रखना नही

७० चढ़ा द्रव्य मँदिर के भँडार में रखना नही।

७१ निर्माल्य द्रव्य मँदिर का मोल लेना नही।

७२ कोई चीज का भाग हिस्सा करना नही।

७३ जूवा होड वगैरह मँदिर में करना नहीं।

७४ वेश्या नाच भँडई रास मँदिर में करना नहीं।

७५ कसरत तथा नटकला मँदिर में करना नही।

७६ अनबोलते बालक को मँदिर में लाना खिलाना नही।

७७ शुक, मैना, बुलबुल आदि पक्षी पालना नहीं।

७८ दरजी का व कतरब्योंत का काम करना नही।

७९ गहना आभरण सुनार से मँदिर में गढाना नहीं।

८० सिवाय दिगम्बर जैन ग्रंथों के और ग्रंथ लिखना लिखाना नहीं।

८१ विकार उपजाने वाले चित्राम लिखना नहीं।

८२ पशु, गाय, भैंस, पक्षी, सुवादि बांधना नहीं।

८३ पापड मगौडी दाल धोना सुखाना नहीं।

८४ अभिमान सहित, विनय रहित मँदिर में प्रवेश करना नहीं।

इस संसार में मोह वस पाप क्रिया करते हुए अनादि से भ्रमण कर रहे है। संसार में कितना सुख दुख है सो निम्न प्रकार जानना।

संसार रूपी वृक्ष (मोहरस स्वरूप)

इस 'मोहरस स्वरूप' का परिचय श्री अमितगति कृत धर्म परीक्षा ग्रन्थ में इस प्रकार बताया है—

एक भव्य पुरुष ने अवधिज्ञानी जिनमति नामक मुनिमहाराज को नमस्कार कर के विनय सहित पूछा कि हे भगवन्! इस असार

संसार में फिरते हुए जीवों को सुख तो कितना है और दुःख कितना है सो कृपा करके मुझे कहिए। यह प्रश्न सुनकर मुनिराजने कहा कि हे भद्र! संसार के सुख दुःख को विभाग कर कहना बड़ा कठिन है, तथापि एक दृष्टांत के द्वारा किंचिन्मात्र कहा जाता है, क्योंकि दृष्टांत के विना अल्पज्ञ जीवों की समझ में नहिं आता सो ध्यान देकर सुन।

अनेक जीवों कर भरे हुए इस संसार रूपी वन के समान एक महावन में दैवयोग से कोई पथिक (रस्तागीर) प्रवेश करता हुवा। सो उस वन में यमराज की समान सूंड़ को ऊंची किए हुए क्रोधायमान बहुत बड़े भयङ्कर हाथी को अपने सन्मुख आता हुआ देखा। उस हाथी ने उस पथिक को भीलों के मार्ग से अपने आगे कर लिया और उसके आगे आगे भागता हुआ वह पथिक पहिलें नहीं देखा ऐसे एक अन्धकूप में गिर पड़ा। जिस प्रकार नरक में नारकी धर्म का अवलम्बन करके रहता है, उसी प्रकार वह भयभीत पथिक उस कूप में गिरता गिरता सरस्तंभ कहिए सेर की जड़ को अथवा बड़ की जड़ को पकड़ कर लटकता हुआ तिष्ठा। सो हाथी के भय से भयभीत हो नीचे को देखता है तो उस कूप में यमराज के दण्ड के समान पड़ा हुआ बहुत बड़ा एक अजगर देखा। फिर क्या देखा कि उस सरस्तंब की जड़ को एक श्वेत और काला दो मूसे निरन्तर काट रहे हैं जैसे शुक्लपक्ष और कृष्ण पक्ष मनुष्य की आयु को काटते हैं।

इस के सिवाय उस कूप में चार कषाय के समान बहुत लम्बे २ अति भयानक चलते फिरते चारों दिशाओं में चार सर्प देखे। उसी समय उस हाथी ने क्रोधित होकर संयम को असंयम की तरह कूप के तटपर खड़े हुए वृक्ष को पकड़कर ज़ोर से हिलाया सो उसके हिलने से उस पर जो मधुमक्खियों का छत्ता था उसमें से समस्त मक्खियें निकल कर दुःसह वेदनाओं के समान उस पथिक के शरीर पर चिपट गईं। तब वह पथिक चारों तरफ मर्मभेदी पीड़ा देने वाली उन मधु मक्खियों से घिरा हुआ अतिशय दुःखित हो ऊपरि को देखने लगा। सो वृक्ष की तरफ मुख को उठाकर देखते ही उस के होठों पर बहुत छोटा एक मधुका बिंदु आपड़ा

सो वह मूर्ख उस नरक की बाधा से भी अधिक बाधा को कुछ
भी दुःख न समझ उस मधुबिंदु के स्वाद को लेता हुआ अपने
को महा सुखी मानने लगा।

इस कारण वह अधम पथिक उन समस्त दुःखों को भूलकर
उस मधु कण के स्वाद में ही आसक्त हो फिर मधुबिंदु के पड़ने
की अभिलाषा करता हुआ लटकता रहा। सो हे भाई! उस समय
पथिक के जितना सुख दुःख है उतना ही सुख दुःख महाकष्टों
की खानि रूप इस संसार रूपी घर में इस जीव के है।

सो जिनेंद्र भगवान् ने कहा है कि वह वन तो पाप है, वह
पथिक है सो जीव है। हस्ती है सो मृत्यु (यमराज) की समान
है। वह सरस्तम्ब है सो जीव की आयु (उमर) है और कूआ है
सो संसार है। अजगर है सो नरक है स्वेत स्याम दो मूषक हैं
सो शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष हैं, जो उमर को घटा रहे हैं। और
चार सर्प हैं सो क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय हैं। तथा
मधुमक्षिकाय हैं सो शरीर के रोग हैं। मधु के बिंदु का जो स्वाद है
सो इंद्रिय जनित सुख (सुखाभास मात्र) हैं। इस प्रकार संसार में
सुख दुःख का विभाग है। वास्तव में इस संसार में भ्रमण करते
हुए जीवों के सुख दुःख का विभाग किया जाय तो मेरुपर्वत की
बराबर तो दुःख है और सरसों की बराबर सुख है। इस कारण
संसार के त्याग करने में ही निरन्तर उद्यम करना चाहिए।

पूजादि अधिकार

हम को नित्य भगवान की पूजादि करनी चाहिए। किसी २ स्थान पर किसी निजी कारण से कोई २ भाई या बहिन द्वेष या अज्ञानता के कारण, किन्ही किसी भाई या जाति को प्रक्षाल पूजा से मने करते हैं जिस से ज्यादा द्वेष बुद्धी फैल कर धर्म आयतनों पर आक्षेप होने लगना है सो ऐसे भाइयों से हमारा नम्र निवेदन है कि ऐसी बुद्धि से निरन्तर पाप बंध होता है। और किसी शास्त्र में किसी को निषेध नहीं लिखा है सिवाय अङ्गहीन इत्यादि। परन्तु सब को जिनेंद्र की पूजा प्रक्षाल का उत्साह दिया है लेकिन शास्त्रोक्त रीति से होना उचित है पुरुष तो सर्वथा कर सकते हैं यहां यह और प्रकाश करते हैं कि "स्त्री समाज" भी पूजा कर सकती है। देखिए पण्डित भूदरदास जी कृत "चरचा समाधान ग्रंथ" चरचा ८१ पृष्ठ ५० पंक्ति ६ :—

(१) सुलोचना पुत्री राजा अकम्पन ने अष्टान्हिक पूजाकरी (महापुराण)।

(२) मैना सुन्दरी ने श्रीपाल के गंदोदक लगाया। अगर अभिषेक पूजा नहीं की तो शरीर के लिए इतना गंदोदक कहां से लाई।

(३) अंजना देवी के भवांतर में कनकोदरी पट्टराणी श्री कण्ठ राजा अरुणनगर में प्रतिमा की स्थापना कर पूजा करी। एक दिन कनकोदरी ने दूसरी रानी लक्ष्मीमती की प्रतिमा मंदिर से बाहर रक्खी सो संयम श्रीनाम अर्जिका के उपदेश से मंदिर में वापिस ले जाकर पूजा की। उस अविनय से अंजना का इस जन्म में पवनजय पति से वियोग हुआ (देखो पद्मपुराण यानी जैन रामायण में)।

(४) वर्तमान में श्रविकाश्रम बम्बई के चैत्यालय में वहां की स्त्रियां पूजादि करती हैं।

पूजा बिना अभिषेक होता नहीं यह नियम है—स्त्री के स्पर्श से दोष होता तो साधु महामुनि, स्त्री के हाथ का भोजन क्यों लेते तिस से उत्तम पतिव्रता गुणवती स्त्रीयों को पूजा का निषेध नहीं । और शास्त्र में कहीं निषेध भी नहीं किया है ।

प्रगट हो कि शास्त्रों में जैनियों को "महाजन" यानी बड़े पुरुष यानी क्षत्रीय तथा ब्रह्म के जानने वालों को ब्राह्मण बतलाया है । श्री ऋषभदेव जी इक्ष्वाकुवंशी थे और उन्होंने ही कर्म भूमि की रचना की । पाठकों के ज्ञानार्थ जैनियों की चौरासी जातें प्रकाश करते हैं । यह सर्व जिनेंद्र पूजा प्रक्षाल कर सक्ते हैं ।

जैनियों की चौरासी जातें ।

१ खंडेलवाल	२२ मेरतवाल	४३ कठनेर	६४ माड़ाहाड़
२ ओसवाल	२३ सहलवाल	४४ लवेंचु	६५ चतुर्थ
३ दूसोरा	२४ सरहिया	४५ धारक	६६ वायडो
४ बघेलवाल	२५ पद्मावती पोरवाल	४६ बाजम	६७ सनेपाल
५ पुशकरवाल	२६ सोरठीया पोरवाल	४७ गोलारार (गोलालार)	६८ पंचम
६ जैसवाल	२७ भटनागिर	४८ गगनारी	६९ कुरवाल
७ सिरोयाल	२८ अम्बुसरार	४९ ओंगोड़	७० कोलापुरी
८ करैया	२९ डेढ (डेढू)	५० खड़ायत	७१ अगोधापुर (अजोध्यापूरब)
९ अग्रवाल	३० पहरतीया	५१ लाड़हरोदर	७२ गोढ
१० पल्लीवाल	३१ नारायन (नारायना)	५२ गोलसिंहार	७३ भठेरा
११ गुनावाल	३२ शड़वड	५३ नरसिंहपुरा	७४ जीयादाल
१२ रायकवाल	३३ हरसोरा	५४ नागुद्रह (नागद्रह या नागदा)	७५ वाचन
१३ अचीतवाल	३४ दूसर (दूसरे)	५५ हूमड (हुंबड)	७६ गरैया
१४ करवाल	३५ अढसप्त	५६ बघनोरा	७७ वायडा
१५ कननसीया	३६ अरुपरवाल	५७ कापड	७८ सावोड़ा
१६ वरैया	३७ गोलापूरब	५८ गुरुवाल	७९ श्रीमाल
१७ ढोसावाल	३८ मौढ	५९ अनोंदरा	८० वैस
१८ मँगलवाल	३९ शठेरा	६० नागरीया	८१ जलहरा
१९ पोरवाल	४० श्रीमाली	६१ नीवा	८२ मभूकरा
२० सूरीवाल	४१ जागर पोरवाल	६२ गागरवा (गगरावो)	८३ गोलापुरी
२१ हटतरवाल	४२ सिंहोरा	६३ ससरापुरवाल	८४ कपाल

हमारे बहुत से भाई बहुधा यह कहते हैं कि हम वैश्य बनिये हैं। धर्म का अवलोकन करें। न्याय पूर्वक मार्ग ग्रहण करें। मरदुमशुमारी में "जैनियों" की जाति अलग रक्खी गई है इसलिए हर जैन व्यक्ति को "जैन जाति" कहना या लिखना या लिखवाना चाहिए।

कुछ जातियों का संक्षेप इतिहास प्रकट करते हैं।

नोट १—जैसवाल—जैन अङ्क१०—११ भाग१ पौष माघ शुक्ला२ सम्बत १९७५ वीर सम्बत २४४५ में प्रकाशित हुआ है "जैसवाल (जैसनेर वाल) में कोई भेद नहीं इसके तीन भेद हुए उपरोचिया तरोचिया और बरैया। अलीगढ़ में राजा जोरासिंह थे वहां पर जो भंडारी के काम पर रहे वे कौल भंडारी कहाये। अलीगढ़ को कौल भी कहते हैं। ज़िले बुलन्दशहर में कुछ ठाकुर लोग हैं उन्होंके जैसवालो से गोत्र मिलते हैं। जैसवाल समस्त भारत में हैं परन्तु झालरापाटन, आगरे, अलीगढ़, धौलपुर, ग्वालियर, उज्जैनादि के आस पास ज्यादा हैं। वे प्रायः राज्य व ज़मींदारी कार्य में हैं। पूर्वजों से वे "दीवानजी" तथा पटवारी के पदों से प्रायः पुकारे जाते हैं। जैसनेर दक्षिण देश के राज्य पर आपत्ति आने से वे भागकर इधर आये थे वैश्यों के साथ रह कर और वैसा कार्य करने से प्रायः वैश्य कहाने लगे। जैसनेर वाल से जैसवाल समय परिवर्तन द्वारा होगया जैसनेर का राजा इक्ष्वाकुवंश का क्षत्री जैनी था उसके कुटुम्बी जैसनेर वाले कहलाते थे और कई एक प्रमाणों से जैसवाल, क्षत्री सिद्ध होते हैं। जैसवाल जाति अनादि से सर्वथा जैन हैं।

प्राचीन जैसवाल आचार्य।

नोट २—आज हम अपने प्रिय पाठकों को कुछ प्राचीन जैसवाल आचार्यों का संक्षिप्त परिचय देते हैं। यह वर्णन प्राचीन पट्टावलियों से उद्धृत किया जाता है।

"दिगम्बर जैन" के गतांक में पट्टावलियों पर एक लेख निकला है, जिसे पण्डित नन्दनलाल जी ने लिखा है। आपने चार पट्टावलियाँ अपने पास बताई हैं। जिन में एक तो वही है जो कि कानपुर की प्रदर्शनी में रक्खी गई थी और जिस के आधार पर हमने प्रथम अङ्क में जैसवाल आचार्यों के नाम दिए थे। यथा—

नं०	संवत्	तिथि	आचार्य	ज्ञाति
१	२६	आसोज सुदी १४	माघनन्दि	जैसवाल
९	२११	फागुन वदी १०	यशोनन्दि	"
२६	६४२	श्रावण सुदी ५	मेरुकीर्ति	"

२—दूसरी पट्टावली आपको भट्टारक मुनीन्द्र कीर्ति से प्राप्त हुई है। उसमें उक्त आचार्यों का कुछ अधिक विवरण है, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं।

३—मिती आसोज सुदी १४ सम्वत २६ स्वामी माघनन्दि जी। आपने जैसवाल कुल को पवित्र किया था आप गृहस्थ अवस्था में २० वर्ष पर्यंत रहे। आप परम योगी थे। आपने ४४ वर्ष पर्यन्त मुनिपद सुशोभित किया था। आपकी शक्ति अगाध थी। ज्ञान भी अलौकिक था। आप आचार्य पद पर ४ वर्ष ४ महीने २६ दिन विराजमान रहे। अंत समय आप साधुपद को गृहण कर समाधिस्थ हो स्वर्गस्थ हुए। आपकी सर्व आयु ६८ वर्ष ५ महीने की थी। माघनंदि नाम के कई आचार्य हो गए हैं। क्या ये माघनंदि मुनि वे हैं जो कुम्भकार घरपर रहे थे? आपकी बनाईहुई पूजा अत्यंत ललित मिलती है।

४—मिती फागुन वदी १० सं० २११ के दिन श्री भगवान् यशोनंदि पद पर विराजे। आपने भी जैसवाल ज्ञाति को अपने जन्म से पवित्र किया था। यथा नाम तथा गुण रूप सर्वत्र प्रसिद्ध थे। आपकी बनाई हुई पञ्च परमेष्ठी पूजा हृदय हारिणी और मनोहर है। आप गृहस्थ अवस्था में मात्र १६ वर्ष रहे। आपके भाव अत्यन्त विशुद्ध और संसार से अतिशय विरक्त थे। निर्ग्रन्थ

पद (मुनि) १७ वर्ष पर्य्यन्त घोर तपश्चरण द्वारा व्यतीत किया आचार्य पद पर आप ४६ वर्ष ४ मास और ६ दिन विराजमान रहे। पूर्ण आयु ८९ वर्ष ४ मास और १२ दिन की थी। चार दिन अनशन नामक सन्यास को धारण कर समाधिस्थ हुए। आपके शिष्य प्रशिष्य मुनि और ब्रह्मचारी अगणित थे। आपने विहार (देशाटन) खूब किया था। राजा महाराजा आपके परम भक्त थे।

२६—श्रावण वदी ५ सम्वत ६४२ श्री मेरुकीर्ति महाराज ने आचार्य पद को भूषित किया। आठवें वर्ष मुन्याश्रम में विद्याध्ययन करने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर गए। और ११ वर्ष ३ मास पर्यन्त समस्त शास्त्रों का पठन कर समस्त विषयों में पूर्ण प्रवीण हो गए। आपकी विद्वत्ता की समता करने वाला उस समय शायद ही कोई विद्वान हो। आपने ४२ वर्ष २ मास तथा १२ दिन पर्यन्त आचार्य पद को अलंकृत किया। जैसवाल कुल को प्रकाशित करने वाले आप थे। पूर्ण आयु ६२ वर्ष २ माह और कुछ दिन थी।

उक्त तीन आचार्यों के अतिरिक्त इस पट्टावली में संख्या ८ पर यशोकीर्ति आचार्य को भी जैसवाल लिखा है। किंतु आगे कोष्ठक में 'जयलवाल' भी लिखा है। और पहली पट्टावली में आपको 'जायलवाल' ही लिखा है कुछ भी हो हम उनका वर्णन भी उद्धृत करते हैं:—

८—मिती जेठ सुदी १० सम्वत १५३ के दिन श्री आचार्य यशोकीर्ति महाराज ने आचार्य पद को विभूषित किया। आप बालपन से ही विरक्त थे। आपकी उग्र शक्ति दिव्य थी। गृहस्थ अवस्था में १२ वर्ष मात्र ही रहे। आप जैसवाल (जायलवाल) * थे। २१ वर्ष पर्यंत आप मुनि निर्ग्रन्थ रहे। आपने ५८ वर्ष ८ मास और २१ दिन आचार्य पद में व्यतीत किए। आपकी पूर्ण आयु ८१ वर्ष और १५ दिन की थी। आप के बाद ५ दिन पर्यंत आचार्य पद शून्य रहा।

तीसरी पट्टावली संस्कृत की है। वह ईडर के भँडार से प्राप्त हुई है। उसमें प्रायः आचार्यों का नाम मात्र है। नीचे के श्लोकों में जैसवाल आचार्यों का नाम है:—

---

* जायलवाल और जैसवाल को आपने एक कैसे लिखा है इस पर प्रकाश डालना चाहिए। —सम्पादक।

श्रीमूलसंघेऽजनि नंदिसंघस्तस्मिन् बलात्कार गणोतिरम्य: ।
तत्राभवत् पूर्व-पदांश वेदी श्री माघनन्दी नर देव वंद्य: ॥ २ ॥

यशकीर्तिर्यशोनंदी देवनंदी मतिः ।
पूज्यपाद: पराख्येयो गुणनंदी गुणाकर: ॥ ८ ॥
माणिक्यनंदी मेघेन्द्र: शान्तिकीर्तिर्महाशय: ।
मेरुकीर्तिर्महाकीर्तिर्विश्वनंदी विदांवर: ॥ ११ ॥

चौथी पट्टावली को आपने अभी प्रकाशित नहीं किया है। अभी केवल ३ पट्टावलियां ही प्रकट हुई हैं। इन पर से ही यह भली भांति प्रकट होजाता है कि प्राचीन काल में जैसवाल जाति इतनी समृद्धि सम्पन्न और विद्यासे युक्त थी कि इसमें स्वामी माघनंदी, यशकीर्ति और मेरुकीर्ति जैसे प्रचण्ड पाण्डित्यपूर्ण आचार्य विद्यमान थे। जिनके कारण जैसवाल जाति आज भी गौरवान्वित है।

जैसवाल भाइयों को अपना पूर्व गौरव स्मरण कर उसी उच्च स्थान को प्राप्त करने के लिए पूर्ण परिश्रम करना चाहिए।

३—एक प्रशस्ति में जैसवाल—

सहयोगी जैन मित्र के ४५ वें अङ्क में पूज्य पं० पंनालाल जी बाकलीवाल ने जयपुर के पाटोदी के जैन मंदिर के एक ग्रंथ प्राकृत उत्तर पुराण की प्रशस्ति प्रकट की है, जिससे विदित होता है कि यह ग्रंथ संवत् १५७५ में (चारसौ वर्ष पूर्व) चौधरी टोडरमल्ल जी जैसवाल ने लिखा था। प्रशस्ति की प्रतिलिपि इतिहास प्रेमियों को उपयोगी होगी अतएव यहां उद्धृत की जाती है—"इति उत्तरपुराण टिप्पणकं प्रभाचंद्राचार्य विरचितंसमाप्तं अथ संवत्सरेऽस्मिन श्री नृप विक्रमादित्य गताब्द: संवत् १५७५

वर्षे भादवा सुदी ५ बुद्ध दिने कुरु जांगल देशे सुल्तान सिकन्दर पुत्र सुलतान इब्राहीम राज्य प्रवर्त्तमाने श्री काष्ठासंघे मथुरान्वये पुष्करगणे भट्टारक श्री गुणभद्र सूरिदेवा: तदाम्नाये—जैसवाल चौ० (धुरी) टोडरमल्लु । चौ जगसीपुत्र इदं उत्तर पुराण टीका लिखायतं । शुभं भवतु । मांगल्यं दधाति लेखक पाठकयो: ॥ इस प्रशस्ति से पाठक यह अनुमान कर सकेंगे कि ४०० वर्ष पूर्व जैसवाल भाई इतने योग्य थे कि वे प्राकृत आदि पुराण जैसे महत्वशाली ग्रन्थ को लिखाकर पढ़ सकते थे । क्या उनकी तुलना हम लोगों से हो सकती है ।
(जैसवाल—जैन पत्र अङ्क ८ कार्तिक शुक्ला २ सं १९७८ वीर सं०२४४८ से उधृत)

नोट३—बाबू प्रभुदयाल और ज्ञानचन्द्र लाहौर कृत जैनतीर्थ यात्रा नम्बर ३७ सन १९०१ पत्र १२३ में लिखा है कि सहारनपुर में ५०० घर सूर्यवंशी क्षत्री अग्रवाल जैनियों के हैं (यह ९ वीं जाति है)

नोट ४—४७ वीं जात—ब्रह्मचारी श्रीलामचीदास श्री कैलाशपर्वत यात्रा जिस को भारत वर्षीय दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी ने सन १९१२ सं०वीर २४३८ में प्रकाश किया । पत्र १ में "क्षत्री लामचीदास सूर्यवंशी गोलालारे जैनी" लिखा है । इन्होंने संवत १८२८ में निर्ग्रंथ मुनि अवस्था धारण की थी ।

नोट ५—इसी प्रकार सर्व जैन जाति के इतिहासों से मालुम करना पुस्तक बढ़ने के भय से और इतिहास संग्रह नहीं किए ।

नोट ६— ✽ गज़ल ✽

जाति की सेवा करनी, यह पहला काम अपना ।
सेवा के वास्ते यह जीवन तमाम अपना ॥ टेक ॥
तुम चाहे गालियां दो भर पेट निन्दा करलो ।
छोडो जो सेवा करनी, जीवन हराम अपना ॥
जीते जी मर मिटेंगे, अच्छी बुरी सहेंगे ।
सेवा मगर करेंगे जब तक है चाम अपना ॥
सेवा का दम भरेंगे, जब तक कि हम जियेंगे ॥ जाति की० ॥

श्रीगुरु का स्वरूप

श्री गुरु महा मुनि का स्वरूप "अन्तर आत्म" विषे पहिले कुछ कह चुके हैं, थोड़ासा और कुछ वर्णन करता हूं; वे १४ अंतरंग परिग्रह [मिथ्यात्व, वेद (स्त्री परुप, नपंसक से अनुराग) राग; द्वेप, हास्य. राति अराति. शोक. भय. जुगुप्सा क्रोध. मान. माया और लोभ] और १० वाह्य परिग्रह [क्षेत्र. वास्तु. चांदी. सोना, धन, धान्य, दासी, दास, कूप्य भांड] से रहित होते हैं, २८ मूलगुण (५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इंद्रियों का रोकना, ६ आवश्यक, ७ अवशेप) और ८४ लाख उत्तर गुण के धारक होते हैं, उनका तेरह: प्रकार यानी ५ महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग), ५ समिति (ईर्य्या, भापा, एपणा, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापन) और ३ गुप्ति (मन, वचन काय) का चरित्र होता है, इसलिये यह दिगम्बर जैन धर्म तेरापंथी कर भी पुकारा जाता है, ऐसे गुरु जिनके किसी प्रकार की चाह नहीं, उनसे ही हमारा यथार्थ कल्याण हो सक्ता है उनकी स्तुति और गुणानुवाद से महापुण्य का आश्रव होता है, और पापों का नाश होता है हम अज्ञानता से वाजवक्त उनकी निन्दा कर बैठते हैं यह हमारी महा भूल है. सामान्य पुरुपकी निन्दा करना पाप है तो ऐसे महात्मा की निन्दा करना क्या वज्र पाप न होगा ? ऐसे महा मुनि के भाव

निर्मल विकार रहित होते हैं जैसे तुरन्त जन्मे बालक के भाव निर्मल होते हैं। वे नग्र मे शरीर रक्षा के लिये जिससे धर्म साधन हो, आहार लेने आते हैं सो भी ३२ अन्तराय टालकर नवधा भक्ति से भोजन लेते हैं वरना जंगलों में, नदियों के तटपर, पर्वतों की चोटीयों पर ध्यानारूढ रहते हैं। वे महामुनि करुणा के सागर आप तिरने वाले दूसरों के तारने वाले होते हैं। उनके भाव सर्वोत्कृष्ट उच्च होते हैं जैसे कूए का जल एक कांच के गिलास में भरकर देखिये तो गदलासा मालुम होगा, यही अवस्था ठीक हम संसारियों की है और तप जप करके जब वह गिलास का जल बिलकुल स्वच्छ यानी कुल कर्दम नीचे बैठ जाता है और जल नर्मल होजाता है सो ठीक वही अवस्था महा मुनियों की है। ऐसे निर्ग्रंथ मुनि, सर्वोत्कृष्ट पूज्य हैं। नग्न अवस्था पर निम्न दृष्टान्त द्वारा विचार करिये।

एक समय सरमद नाम का मुसलमान फकीर देहली के गली कूचों में अहना (नङ्गा) मादर जाद होकर घूम रहा था। औरङ्गजेब बादशाह ने देखा, तन पोशिश के लिए कपड़े भेजे, फकीर मजजून (अपनी ही आत्मा में लीन निजानंद अवस्था में) और वली था। कह कहा (खिल खिलाकर) हंसा! कलम दवात कागज पास था एक रुबाई [शैर (छंद)] लिखी और बादशाह के खिलअत को यों ही वापिस कर दिया- रुबाई यह थी !

आंकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद।
मारा हम और अस्वाव परेशानी दाद॥
पोशानीद लवास हरकारा ऐबे दीद।
वे ऐबा रा लववास अयानी दाद॥

अर्थ—जिस ने तुमको बादशाही ताज दीया उसी ने हम को परेशानी का सामान दीया। जिस किसी में कोई ऐब पाया उस को लिवास पहिनाया और जिन में ऐब न पाए उनको नंगेपन का लिवास दिया।

यह लाख रुपये का कलाम है। हमको नंगेपन पर घृणा या निंदा न करना चाहिए। ज्ञान और तप से उन की आत्मा और इंद्रियां निर्मल और दमन हो गई हैं हम को उनके उच्च आदर्श भावों पर विचार करना चाहिए। चूंकि हमारी आत्मा विकार सहित और कामातुर है इस लिए हम अज्ञानी, उनके शरीर की तरफ कुदृष्टी कर लेते हैं जैसे कहावत है कि चोर सबको चोर ही समझता है इत्यादि। सुनिए छोटे बालक लड़के लड़कियां नग्न रह कर एक जगह खेलते हैं परंतु ज्यों २ संसारी कामों का उन पर असर पड़ता जाता है और कामातुर होने को अवस्था नजर आती है फ़ौरन उनको कपड़े पहना दिए जाते हैं। तरुण अवस्था में उन्हें एक जगह खेलने भी नहीं देते। जब संसारी कामों में लग-कर, ज्ञान प्राप्त होता है तो संसार को हेच समझने लगते हैं और ज्ञान द्वारा संसारी विकारों को निकालते हुए, गृहस्थ अवस्था को त्याग देते हैं यहां पूर्ण विचार करिए कि जब तक संसारी अवस्था का चक्र न पड़ा था तब तक नंगे रहे और जब चक्र पड़ गया तो कपड़े पहनने लगे। मगर जब संसारी चक्र निकल गया तो फिर कपड़े छोड़ दिए अब कौन सी बुराई की बात रही। यहां ज्ञान की बात है हम विकारी कपड़े पहिने हुए, इन्हीं नेत्रों से माता पिता भाई बहिन, स्त्री पति, पुत्र पुत्री, इत्यादि को देखते हैं मगर भावों का विचार रखते हैं। इस लिए यह स्वतः सिद्ध हो गया कि हमको ऐसे देव गुरु का दर्शन सर्वोत्कृष्ट उच्च भावों से करना चाहिए और उनके चर्णों की पूजा कर मनुष्य जीवन सफल करना आवश्यक है। सिद्धांत यह है कि आतमा को शारीरिक बंधन से और तअल्लुकात पोशिश से आजाद करके बिलकुल नग्न करदीया जाय ताकि इस का निजरूप देखन में आवे, वे जाहिरदारी के रस्मोरिवाज से परे रहते हैं। ऐब की क्या बात है। वे ईश्वर कुदी (यानी निज आत्म में लीन) रहने वाले हैं। यदि हम अपना सा समझें तो क्या हमारी महाभूल नहीं है? जैसा हम भाव व भृकुटी करेंगे वैसा ही हमारे लिए बंध है यानी दर्पण में जैसा मुख करो वैसा ही दीखता है। जिस नद के किनारे ऐसे जैन मुनि पहुंच जाते हैं दुर्भिक्ष व मरी जाती रहती है उनके चर्णोदक व चरण रज मस्तक पर चढ़ाने से शरीर निरोग और गुणों की खान हो जाता है। हमारा ऐसे जैन जती

को वारम्बार नमस्कार होवे। जहां २ ऐसे महान गुरुओं ने तप किया है वही स्थान जग में तीर्थ होगए हैं।

* अङ्गरेजो में भी गजल इस प्रकार है *

"LIVES OF GREAT MEN ALL REMIND US,
WE CAN MAKE OUR LIVES SUBLIME,
AND DEPARTING, LEAVE BEHIND US,
FOOT—PRINTS ON THE SANDS OF TIME.

रेखता।

चलो देखो दिगम्बर मुनि महानारूढ आतम में।
खड़े निश्चल हैं वे वन में तपस्या हो तो ऐसी हो॥
गरीषम काल कैसा है कुरंग वन में भये कायर।
शिखर पर हैं खड़े निर्भय तपस्या हो तो ऐसी हो॥
ऋतू पावस अती गरजें पड़े हैं मेघ की धारा।
वृक्ष तल पद्म आसन है तपस्या हो तो ऐसी हो॥
यह देखो शीत की सरदी गले हैं मद भी वानर के।
लगा है ध्यान सरतापर तपस्या हो तो ऐसी हो॥
दहाड़े सिंह जिस वन में लगा ध्यान आतम में।
चढ़ी है बेलि जिन तन में तपस्या हो तो ऐसी हो॥
शुद्ध उपयोग हुताशन में कर्मको जारते निशदिन।
शत्रु और मित्र से समता तपस्या हो तो ऐसी हो॥
सुगुरू की है यही पहँचान वखानी जैन शासन में।
झुकाकर सिर करू सिजदा तपस्या हो तो ऐसी हो॥

अब कुछ अजैन विद्वानों की भी सम्मतियां यहां पर प्रकट करते हैं जिसको लाला केसरीमल मोतीलाल राँका ब्यावर वाले ने फरवरी १९२३ में संग्रह कर ट्रैक्ट द्वारा इस प्रकार प्रकाश किया था।

जैन धर्म की प्राचीनता व उत्तमता के विषय में अजैन सुप्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियें ।

श्रीयुत महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्या भूषण एम० ए० पी० एच० डी० एफ० आई० आर० एस० सिद्धांत महोदधि प्रिंसापिल संस्कृत कालिज कलकत्ता ।

आपने २६ दिसम्बर सन् १९११ को काशी (बनारस) नगर में जैन धर्म के विषय व्याख्यान दिया उसका सार रूप कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं ।

जैन साधु——एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करने के द्वारा पूर्ण रीति से व्रत, नियम और इन्द्रिय संयम का पालन करता हुआ जगत के सम्मुख आत्म संयम का एक बड़ा ही उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है। प्राकृत भाषा अपने सम्पूर्ण मधुमय सौन्दर्य को लिए हुए जैनियों को रचना में ही प्रगट की गई है ।

[२]

श्रीयुत महा महोपाध्याय सत्य सम्प्रदाया चार्य्य सर्वान्तर पंडित स्वामी रामामिश्र जी शास्त्री भूत प्रोफेसर संस्कृत कालेज बनारस ।

आपने मि० पौष शु० १ सं० १९६२ को काशीनगर में व्याख्यान दिया उस में के कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं ॥

(१) ज्ञान, वैराग्य, शांति, क्षान्ति, अदम्भ अनीर्ष्या, अक्रोध अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टि इत्यादि गुणों में एक एक गुण ऐसा है कि जहां वह पाया जाय वहां पर बुद्धिमान् पूजा करने लगते हैं। तब तो जहां ये (अर्थात् जैनों में) पूर्वोक्त सब गुण निरतिशय सीम होकर विराजमान हैं उनकी पूजा न करना अथवा ऐसे गुण पूजकों की पूजा में बाधा डालना क्या इन्सानियत का कार्य है?

(२) मैं आपको कहाँ तक कहूँ, बड़े बड़े नामी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो जैन मत खण्डन किया है वह ऐसा किया है जिसे सुन सुनकर हंसी आती है।

(३) स्याद्वाद का यह (जैन धर्म) अभेद्य किला है उस के अन्दर वादी प्रतिवादियों के मायामय गोले नहीं प्रवेश कर सकते।

(४) सज्जनों एक दिन वह था कि जैन सम्प्रदाय के आचार्यों के हुंकार से दसों दिशाएं गूंज उठती थीं।

(५) जैन मत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ।

(६) मुझे इस में किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादि दर्शनों से पूर्व का है।

[२]

भारत गौरव के तिलक पुरुष शिरोमणी इतिहासज्ञ, माननीय पं० बाल गंगाधर तिलक* के ३० नवम्बर सन १९०४ को बडोदा नगर में दिये हुए व्याख्यान से उद्धृत कुछ वाक्य।

(१) श्रीमान् महाराज गायकवाड (बड़ोदा नरेश) ने पहले दिन कानफरेंस में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार 'अहिंसा परमोधर्मः' इस उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्व काल में यज्ञ के लिए असंख्य पशु हिंसा होती थी इस के प्रमाण मेघदूत काव्य आदि अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं——परंतु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय (पुण्य) जैन धर्म के हिस्से में है।

(२) ब्राह्मण धर्म को जैन धर्म ही ने अहिंसा धर्म बनाया

(३) ब्राह्मण व हिंदू धर्म में जैन धर्म के ही प्रताप से मांस भक्षण व मदिरा पान बंद हो गया।

---

*भूत पूर्व सम्पादक केसरी।

(४) ब्राह्मण धर्म पर जो जैन धर्म ने अक्षुण्ण छाप मारी है उस का यश जैन धर्म ही के योग्य है। जैन धर्म में अहिंसा का सिद्धांत प्रारम्भ से है, और इस तत्व को समझने की त्रुटि के कारण बौद्ध धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्व भक्षी हो गया है।

(५) पूर्व काल में अनेक ब्राह्मण जैन पण्डित जैन धर्म के धुरन्धर विद्वान हो गए हैं।

(६) ब्राह्मण धर्म जैन धर्म से मिलता हुआ है इस कारण टीक रहा है। बौद्ध धर्म जैन धर्म से विशेष अमिल होने के कारण हिंदुस्तान से नाम शेष हो गया।

(७) जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म का पीछे से इतना निकट संबंध हुआ है कि ज्योतिष शास्त्री भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ में ज्ञान दर्शन और चारित्र (जैन शास्त्र विहित रत्नत्रय धर्म) को धर्म के तत्व बतलाए हैं।

केसरी पत्र १३ दिसम्बर सन १९०४ में भी आप ने जैन धर्म के विषय में यह सम्मति दी है।

ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैन धर्म अनादि है यह विषय निर्विवाद तथा मत भेद रहित है। सुतरां इस विषय में इतिहास के दृढ़ सबूत हैं और निदान ईस्वी सन से ५२६ वर्ष पहले का तो जैन धर्म सिद्ध है ही। महावीर स्वामी जैन धर्म को पुनः प्रकाश में लाए इस बात को आज २४०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं बौद्ध धर्म की स्थापना के पहले जैन धर्म फैल रहा था यह बात विश्वास करने योग्य है। चौबीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अंतिम तीर्थंकर थे, इस से भी जैन धर्म की प्राचीनता जानी जाती है। बौद्ध धर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है।"

[४]

पेरिस (फ्रांस की राजधानी) के डाक्टर ए० गिरनाट अपने पत्र ता० ३-१२-१९११ में लिखा है कि

मनुष्यों की तरक्की के लिए जैन धर्म का चारित्र बहुत लाभकारी है यह धर्म बहुत ही असली, स्वतन्त्र, सादा, बहुत मूल्य वान तथा ब्राह्मणों के मतों से भिन्न है तथा यह बौद्ध के समान नास्तिक नहीं है।

[५]

जर्मनी के डाक्टर जोहनस हर्टल ता० १७-६-१९०८ के पत्र में कहते हैं कि

मैं अपने देश वासियों को दिखाऊंगा कि कैसे उत्तम नियम और ऊंचे विचार जैन धर्म और जैन आचार्यों में है। जैन का साहित्य, बौद्धों से बहुत बढ़कर है और ज्यों २ मैं जैन धर्म और उसके साहित्य समझता हूं त्यों २ मैं उनको अधिक पसन्द करता हूं।

[६]

अन्यमतधारी मिस्टर कन्नुलाल जोधपुर की सम्मति—
(देखो The Theosophist माह दिसंबर सन १९०४ व जनवरी सन १९०५)

जैन धर्म एक ऐसा प्राचीन धर्म है कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना एक बहुत ही दुर्लभ बात है। इत्यादि

[७]

मि० आबे जे० ए० डबाई की सम्मति:—

(Discription of the character manners and customs of the people of India and of their institution and ciril.)

इस नाम की पुस्तक में जो सन १८१७ में लंडन में छपी हैं आपने बहुत बड़े व्याख्यान में जैन धर्म को बहुत प्राचीन लिखा

है। इस में जैनियों के चार वेद प्रथमानुयोग चरणानुयोग, करणानुयोग, और द्रव्यानुयोग, को आदिश्वर भगवान ने रचा ऐसा कहा है और आदिश्वर को* जैनियों में बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध पुरुष जैनियों के २४ तीर्थंकरों में सब से पहले हुए हैं ऐसा कहा है।

(८)

श्रीयुत वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० बंगला श्रीयुत नाथूराम प्रेमी द्वारा अनुवादित हिन्दी लेख से उद्धृत कुछ वाक्य।

(१) जैन निरामिष भोजी (मांस त्यागी) क्षत्रियों का धर्म है।

(२) जैन धर्म हिन्दु धर्म से सर्वथा स्वतंत्र है उसकी शाख या रूपान्तर नहीं है। मेक्समुलर का भी यह ही मत है।

(३) पार्श्वनाथ जी जैन धर्म के आदि प्रचारक नहीं थे परन्तु इसका प्रथम प्रचार रिषभदेवजी ने किया था इसकी पुष्टी के प्रमाणों का अभाव नहीं है।

(४) बौद्ध लोग महावीर जी को निर्ग्रन्थों अर्थात जैनियों का नायक मात्र कहते हैं स्थापक नहीं कहते। जर्मन डाक्टर जेकोबी का भी यह ही मत है।

(५) जैन धर्म ज्ञान और भावको लिये हुए है और मोक्ष भी इसी पर निर्भर है।

(९)

रारा वासुदेव गोविंद आपटे बी० ए० इन्दौर निवासी के व्याख्यान से कुछ वाक्य उद्धृत।

(१) प्राचीन काल में जैनियों ने उत्कृष्ट पराक्रम वा राज्य* भार का परिचालन किया है।

(२) जैन धर्म में अहिंसा का तत्व अत्यन्त श्रेष्ठ है (३) जैनधर्म

---

* आदिश्वर को जैनी रिषभदेवजी कहते हैं।

* प्राचीन काल में चक्रवर्ती, महा मण्डलीक, मंडलीक आदि बड़े २ पदाधिकारी जैनधर्मी हुए हैं जैनियों के परम पूज्य २४ सों तीर्थंकर भी सूर्यवंशी चन्द्रवंशी आदि क्षत्रिय कुलोत्पन्न बड़े२ राज्याधिकारी हुए जिसकी साक्षी जैन ग्रन्थों तथा किसी २ अजैन शास्त्रों व इतिहास ग्रन्थों में भी मिलती है।

में यति धर्म अत्यंत उत्कृष्ट है इस में संदेह नहीं (५) जैनियों में स्त्रियों को भी यति दिक्षा लेकर परोपकारी कृत्यों में जन्म व्यतीत करने की आज्ञा है यह सर्वोत्कृष्ट है (६) हमारे हाथ से जीव हिंसा न होने पावे इसके लिए जैनो जितने डरते हैं उतने बौद्ध नहीं डरते। बौद्ध धर्म देशों में मांसाहार अधिकता से जारी है आप स्वतः हिंसा न करके दूसरे के द्वारा मारे हुए बकरे आदि का मांस खाने में कुछ हर्ज नहीं ऐसे सुभीते का अहिंसा तत्व जो बौद्धों ने निकाला था वह जैनियों को स्वीकार नहीं है। (७) जैनियों की एक समय हिंदुस्तान में बहुत उन्नतावस्था थी। धर्म, नीति, राज कार्य धुरंधरता शास्त्रदान समाजोन्नति आदि बातों में उनका समाज इतर जनों से बहुत आगे था।

संसार में अब क्या हो रहा है इस ओर हमारे जैन बंधु लक्ष देकर चलेंगे तो वह महापद पुनः प्राप्त कर लेने में उन्हें अधिक श्रम नहीं पड़ेगा।

[१०]

सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ प्रोफेसर डा० हर्मन जेकोबी एम० ए० पी० एच० डी० बोन जर्मनी।

जैन धर्म सर्वथा स्वतंत्र धर्म है मेरा विश्वास है कि वह किसी का अनुकरण नहीं है और इसी लिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्वज्ञान का और धर्म पद्धति का अध्ययन करने वालों के लिए वह बड़े महत्व की वस्तु है।

[११]

पूर्व खानदेश के कलक्टर साहिब श्रीयुत ओटोरॉय फिल्ड साहिब ७ दिसम्बर सन १९१४ को पाचोरा में श्रीयुत वछराज जी रूपचन्द जी की तरफ एक पाठशाला खोलने के समय आपने अपने व्याख्यान में कहा कि—

जैन जाति दया के लिए खास प्रसिद्ध है, और दया के लिए हजारों रुपया खर्च करते हैं। जैनी पहले क्षत्री थे, यह उनके चहरे व नाम से भी जाना जाता है। जैनी अधिक शांति प्रिय हैं। (जैन हितेच्छु पुस्तक १६ अंक ११ में से)

[१२]

मुहम्मद हाफिज सय्यद बी० ए० एल. टी. थियोसोफिकल हाई स्कूल कानपुर लिखते हैं।

"मैं जैन सिद्धांत के सूक्ष्म तत्वों से गहरा प्रेम करता हूं।

[१३]

रायबहादुर पूर्नेन्दु नारायण सिंह एम. ए० बांकीपुर लिखते हैं—

जैन धर्म पढ़ने की मेरी हार्दिक इच्छा है, क्योंकि मैं खयाल करता हूं कि व्यवहारिक योगाभ्यास के लिए यह साहित्य सब से प्राचीन (Oldest) है यह वेद की रीति रिवाजों से पृथक है इस में हिंदू धर्म से पूर्व की आत्मिक स्वतंत्रा विद्यमान है, जिसको परम पुरुषों ने अनुभव व प्रकाश किया है यह समय है कि हम इसके विषय में अधिक जानें।

[१४]

महा महोपाध्याय पं० गंगानाथ झा एम० ए० डी० एल० एल. इलाहाबाद—

"जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धांत पर खंडन को पढ़ा है, तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धांत में बहुत कुछ है जिसको वेदांत के आचार्य ने नहीं समझा, और जो कुछ अब तक मैं जैन धर्म को जान सका हूं उस से मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि यदि वह जैन धर्म को उसके असली ग्रंथों से देखने का कष्ट उठाता तो उनको जैन धर्म से विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती।

[१५]

नैपालचन्द्र राय अधिष्ठाता ब्रह्मचर्याश्रम शांतिनिकेतन बोलपुर:—मुझको जैन तीर्थंकरों की शिक्षा पर अतिशय भक्ति है।

एम० डी० पाण्डे—थियोसोफिकल सोसायटी बनारस ।

मुझे जैन सिद्धांत का बहुत शौक है, क्योंकि कर्म सिद्धांत का इस में सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है ।

सम्मति नंबर १२ से १५ जैन मित्र भाग १७ अङ्क १० वें से संग्रह की गई हैं ।

(१६)

सुप्रसिद्ध श्रीयुत महात्मा शिवव्रतलाल जी वर्मन, एम० ए०, सम्पादक "साधु" "सरस्वतीभण्डार", तत्वदर्शी" मार्तण्ड "लक्ष्मीभण्डार", "सन्त सन्देश" आदि उर्दू तथा नागरी मासिक पत्र, रचयिता विचार कल्पद्रुम, "विवेक, कल्पद्रुम", "वेदांत कल्पद्रुम," "कल्याण धर्म," कबीरजी का बीजक,"आदि ग्रंथ, तथा अनुवादक "विष्णु पुराणादि" ।

इन महात्मा महानुभाव द्वारा सम्पादित " साधु" नामक उर्दू मासिक पत्र के जनवरी सन् १९११ के अङ्क में प्रकाशित "महावीर स्वामी का पवित्र जीवन" नामक लेख से उद्धृत कुछ वाक्य, जो न केवल श्री महावीर स्वामी के लिए किंतु ऐसे सर्व जैन तीर्थंकरों, जैनमुनियों तथा जैन महात्माओं के संबंध में कहे गए हैं:—

(१) "गए दोनों जहान नजर से गुजर तेरे हुस्न का कोई बशर न मिला" ।

(२) यह जैनियों के आचार्य्य गुरु थे । पाकदिल, पाक ख़याल, मुजस्सम—पाकी व पाकीज़गी थे । हम इनके नाम पर इनके काम पर और इनकी बेनज़ीर नफ्सकुशी व रियाज़त की मिसालपर, जिस क़दर नाज़ (अभिमान) करें बजा (योग्य) है ।

(३) हिंदुओ ! अपने इन बुज़ुर्गों की इज्ज़त करना सीखो.........तुम इनके गुणों को देखो, उनकी पवित्र सूरतों का दर्शन करो, उनके भावों को प्यार की निगाह से देखो; यह धर्म कर्म की झलकती हुई चमकती दमकती मूर्तें हैं.........उनका

दिल विशाल था, वह एक वेपायाकनार समन्दर था जिस में मनुष्य प्रेम की लहरें ज़ोर शोर से उठती रहती थीं और सिर्फ मनुष्य ही क्यों उन्होंने संसार के प्राणीमात्र की भलाई के लिए सब का त्याग किया जानदारों का खून बहाना रोकने के लिए अपनी ज़िदगी का खून कर दिया। यह अहिंसा की परम ज्योति वाली मूर्तियां हैं। वेदों की श्रुति "अहिंसा परमो धर्मः" कुछ इनहीं पवित्र महान पुरुषों के जीवन में अमली सूरत इख्तियार करती हुई नजर आती है।

ये दुनियां के जवरदस्त रिफार्मर, जवरदस्त उपकारी और वड़े ऊंचे दर्जे के उपदेशक और प्रचारक गुज़रे हैं। यह हमारी क़ौमी तवारीख (इतिहास) के कीमती (बहुमूल्य) रत्न हैं। तुम कहां और किन में धर्मात्मा प्राणियों की खोज करते हो इन्हीं को देखो इन से वेहतर (उत्तम) साहवे कमाल तुम को और कहां मिलेंगे। इन में त्याग था, इन में वैराग्य था, इन में धर्म का कमाल था यह इन्सानी कमजोरियों से बहुत ही ऊंचे थे। इनका खिताव "जिन" है जिन्हों ने मोह माया को और मन और काया को जीत लिया था। यह तीर्थंकर हैं। इन में बनावट नहीं थी, दिखावट नहीं थी, जो बात थी साफ साफ थी। ये वह लासानी (अनौपम) शखसीयतें हो गुजरी हैं जिनको जिसमानी कमजोरियां व ऐवों के छिपाने के लिये किसी जाहिरी पोशाक की जरूरत लाहक नहीं हुई। क्यो कि उन्होंने तप करके, जप करके योग का साधन करके अपने आपको मुकम्मिल और पूर्ण वना लिया था.........इत्यादि इत्यादि.........

(१७)

श्रीयुत तुकाराम कृष्ण शर्मा लट्टु वी० ए० पी-एच० डी० एम० आर० ए० एस० एम० ए० एस० वी० एम० जी० ओ० एस० प्रोफेसर संस्कृत सिलालेखादि के विषय के अध्यापक क्विन्स कालिज वनारस।

स्याद्वाद महा विद्यालय काशी के दशम वार्षिकोत्सव पर दिये हुए व्याख्यान में से कुछ वाक्य उद्धृत।

(१) सबसे पहले इस भारत वर्ष में "रिषभदेव" नाम के महर्षि उत्पन्न हुए, वे दयावान भद्रपरिणामी, पहिले तीर्थंकर हुए जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था को देखकर "सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी मोक्ष शास्त्र का उपदेश किया। बस यह ही जिन दर्शन' इस कल्प में हुआ। इसके पश्चात अजीतनाथ से लेकर महावीर तक तेईस तीर्थंकर अपने २ समय में अज्ञानी जीवों का मोह अंधकार नाश करते रहे।

(१८)

साहित्य रत्न डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर कहते हैं कि:—

महावीर ने डौंडींग नाद से, हिंद में ऐसा संदेश फैलाया कि:—धर्म यह मात्र सामाजिक रूढ़ि नहीं है परंतु वास्तविक सत्य है। मोक्ष यह बाहरी क्रिया कांड पालने से नहीं मिलता, परंतु सत्य धर्म स्वरूप में आश्रय लेने से ही मिलता है। और धर्म और मनुष्यमें कोई स्थाई भेद नहीं रह सकता। कहते आश्चर्य पैदा होता है कि इस शिक्षा ने समाज के हृदय में जड़ करके बैठी हुई भावना रूपी विघ्नों को त्वरा से भेद दिये और देश को वशीभूत कर लिया इसके पश्चात् बहुत समय तक इन क्षत्रिय उपदेशकों के प्रभाव बल से ब्राह्मणों की सत्ता अभिभूत होगई थी।

(१९)

टी. पी. कुप्पूस्वामी शास्त्री एम. ए. आसिसटेन्ट गवर्नमेन्ट म्युजियम तंजौर के एक अंग्रेजी लेख का अनुवाद "जैन, हितैषी भाग १० अंक २ में छापा है उस में आपने बतलाया है कि:—

(१) तीर्थंकर जिनसे जैनियों के विख्यात सिद्धांतों का प्रचार हुआ है आर्य्य क्षत्रिय थे (२) जैनी अवैदिक भारतीय-आर्यों का एक विभाग है।

(२०)

श्री स्वामी विरूपाक्ष वाडियर 'धर्म भूषण' 'पण्डित वेद तीर्थ' 'विद्यानिधी' एम. ए. प्रोफेसर संस्कृत कालेज इन्दौर

स्टेट' आपका "जैन धर्म मीमांसा" नाम का लेख चित्र मय जगत में छपा है उसे 'जैन पथ प्रदर्शक' आगरा ने दीपावली के अंक में उद्धृत किया है उस के कुछ वाक्य उद्धृतः—

(१) ईर्षा द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकने वाली विपत्ति के रहते हुए जैन शासन कभी पराजित न हो कर सर्वत्र विजयी ही होता रहा है। इस प्रकार जिस का वर्णन है वह 'अर्हन्देव' साक्षात परमेश्वर (विष्णु) स्वरूप है इसके प्रमाण भी आर्य ग्रंथों में पाये जाते हैं।

(२) उपरोक्त अर्हन्त परमेश्वर का वर्णन वेदों में भी पाया जाता है।

(३) एक बंगाली बैरिष्टर ने 'प्रेक्टिकल पाथ' नामक ग्रंथ बनाया है। उस में एक स्थान पर लिखा है कि रिषभदेव का नाती मरीचि प्रकृति वादि था, और वेद उसके तत्वानुसार होने के कारण ही ऋगवेद आदि ग्रंथों की ख्याति उसी के ज्ञानद्वारा हुई है फलतः मरीचि रिषी के स्त्रोत, वेद पुराण आदि ग्रंथों में है यदि स्थान स्थान पर जैन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है तो कोई कारण नहीं कि हम वैदिक काल में जैन धर्म का आस्तित्व न मानें।

(४) सारांश यह है कि इन सब प्रमाणों से जैन धर्म का उल्लेख हिंदुओं के पूज्य वेद में भी मिलता है।

(५) इस प्रकार वेदों में जैन धर्म का आस्तित्व सिद्ध करने वाले बहुत से मंत्र हैं। वेद के सिवाय अन्य ग्रंथों में भी जैन धर्म के प्रति सहानुभूति प्रगट करने वाले उल्लेख पाये जाते हैं। स्वामी जी ने इस लेख में वेद, शिव पुराणादि के कई स्थानों के मूल श्लोक दे कर उस पर व्याख्या भी की है।

(६) पीछे से जब ब्राह्मण लोगों ने यज्ञ आदि में बलिदान कर 'मा हिंसात सर्व भूतानि' वाले वेद वाक्य पर हरताल

फेर दी उस समय जैनियों ने उन हिंसामय यज्ञ यागादि का उच्छेद करना आरंभ किया था बस तभी से ब्राह्मणों के चित्त में जैनो के प्रति द्वेष बढ़ने लगा, परंतु फिरभी भागवतादि महा पुराणो में रिषभदेव के विषय में गौरव युक्त उल्लेख मिल रहा है।

(२१)

अम्बु जाक्ष सरकार एम० ए० बी० एल० लिखित 'जैन दर्शन जैन धर्म' के जैन हितैषी भाग १२ अङ्क ९-१० में छपा है उस में के कुछ वाक्य।

(१) यह अच्छी तरह प्रमाणित हो चुका है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा नहीं है (महावीर स्वामी जैन धर्म के स्थापक नहीं हैं उन्हो ने केवल प्राचीन धर्म का प्रचार किया है

(२) जैन दर्शन में जीव तत्व की जैसी विस्तृत आलोचना है और वैसी किसी भी दर्शन में नहीं है।

आवश्यक १० बोल।

(१) जैन धर्म आत्मा का निज स्वभाव है और एक मात्र उसी के द्वारा सुख सम्पादन किया जा सक्ता है।

(२) सुख मोक्ष में ही है जिसको कि प्राप्त कर के यह अनादि कर्म मल से संसार चतुर्गति में परिभ्रमण करने वाला अशुद्ध और दुखी आत्मा निज परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर सदैव आनन्द में मग्न रहा करता है।

(३) स्मरण रक्खो कि मोक्ष मांगने और किसी के देने से नहीं मिलती। उसकी प्राप्ति हमारी पूर्ण वीतरागता और पुरुषार्थ से कर्म मल और उनके कारण नष्ट करने पर ही अवलम्बित है।

(४) स्याद्वाद सत्यता का स्वरूप है और वस्तु के अनन्त धर्मों का यथार्थ कथन कर सक्ता है।

(५) जैन धर्म ही परमात्मा का उपदेश है क्यों कि वही पूर्वा पर विरोध और पक्षपात रहित सब जीवों को उनके कल्याण का उपदेश देता है और उसी से परमात्मा की सिद्धि और छाप इस संसार में है।

(६) एक मात्र 'ही' और 'भी' ही अन्य धर्म और जैन धर्म का भेद है। यदि उन सब के भाव और उपदेश की इयत्ता की 'ही' 'भी' से बदल दी जाय तो उन्हीं सबका समुदाय जैन धर्म है।

(७) मत समझो कि जैन धर्म किसी समुदाय विशेष का ही धर्म है या हो सक्ता है। मनुष्यों की तो कहे कौन जीवमात्र इस को स्वशक्त्यानुसार धारण कर तद्रूप निज कल्याण कर सकता है।

(८) जैनधर्म के समस्त तत्व और उपदेश वस्तु स्वरूप, प्राकृतिक नियम, न्यायशास्त्र शक्यानुष्ठान और विकाश सिद्धान्त के अनुसार होने के कारण सत्य हैं।

(९) सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशक देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसा प्ररूपक शास्त्र ही जीव को यथार्थ उपदेश दे सकते हैं और उन सबके रखने का सौभाग्य एक मात्र जैन धर्म को ही प्राप्त है।

(१०) समस्त दुःखों से उद्धार करने वाली जैनेन्द्री दीक्षा ही है। यदि उसकी शक्ति न हो तो भी वैसा लक्ष्य रख अन्याय और अभक्ष्य का त्याग करके ग्रहस्थ मार्ग द्वारा क्रमशः स्वपर कल्याण करते रहना चाहिये।

॥ समाप्त ॥

श्री दिगम्बर जैन धर्म प्रकाशक मंडल देहली ने अजैन विद्वानों की सम्मति संग्रह कर "जैन धर्म का महत्व नामा ट्रेक्ट ता० २८ जनवरी १९२१ को इस प्रकार प्रकाश किया था।

जैनधर्म का महत्व

(१) सुप्रसिद्ध श्रीयुत महात्मा शिवव्रतलालजी वर्म्मन M, A, " साधू " " सरस्वती भण्डार " " तत्वदर्शी " मार्तण्ड " लक्ष्मीभण्डार " " सन्त " " सन्देश " आदि उर्दू तथा नागरी मासिक पत्रों के सम्पादक " विचार कल्पद्रुम " " विवेक कल्पद्रुम " 'वेदान्त कल्पद्रुम' आदि के रचयिता विष्णुपुराणादि अनेक ग्रन्थों के अनुवादक.

इन महात्मा महानुभाव द्वारा सम्पादित " साधू " नामक उर्दू मासिकपत्र जनवरी सन १९११ के अङ्क में प्रकाशित "महावीर स्वामी का पवित्र जीवन" नामक लेख का सारांश (जो न केवल श्रीमहावीर स्वामी के संबंध में किंतु ऐसे सर्व जैन तीर्थकरों, व जैन मुनियों के सम्बन्ध में समझना)।

हिंदुओं में ऐसे लोग कम नजर आयेंगे जो महावीर स्वामी के पाक और मुकद्दस नाम से वाकिफ होंगे। ये जैनियों के आचार्य्य गुरु थे पाक दिल, पाक ख्याल, मुजस्सिमपाकी व पाकीज़गी थे।

हिंदुओ! अपने बुजुर्गों की इज्जत करना सीखो, मजहबी इख्तलाफात की वजह से उनकी शान में भूलकर भी कल्में नाजेबा इस्तेमाल न करो। जैनी हम से जुदा नहीं हैं। उन

नादानों की बातों को न सुनो, जो गलती से, गुमराही से, नादानी और तास्सुब से कहते हैं कि "हाथी के पांव के तले दब जाओ, मगर जैन मन्दिर में घुसकर अपनी हिफाजत न करो।" इस तास्सुब का कहीं ठिकाना है? इस तङ्ग दिली की कोई हद भी है? आखिर इन से तास्सुब क्यों किया जाय? क्या हुआ अगर इनके किसी ख्याल तुमको मुवाफकत नहीं हैं? न सही, कौन सब बातों में सब से मिलता है? तुम उन के गुणों को देखो, उनकी पाकीजह सूरतों का दर्शन करो, उनके भावों को प्यार की निगाह से नज्जारह देखो ये धर्म कर्म की झलकती हुई नूरानी मूर्तें हैं। किसी के कहने सुनने पर न जाओ। जो जैसा हो उसको वैसा ही देखो। यह अहिंसा की परम ज्योतिवाली मूर्तियां हैं, वेदों की श्रुति 'अहिंसा परमो धर्मः' कुछ इन्हीं पाक बुजुर्गों की ज़िंदगी में अमली सूरत अख्तयार करती हुई नजर आती है। ये दुनियां के जबरदस्त रिफार्मर जबरदस्त मोहसिन और बडे ऊंचे दर्जे के वाइज और प्रचारक गुजरे हैं, यह हमारी कौमी तवारीख के कीमती रत्न हैं। तुम कहां और किन में धर्मात्मा प्राणियों की तलाश करते हो? इन को देखो, इन से बेहतर साहब कमाल तुमको कहां मिलेंगे? इन में त्याग था, इन में वैराग्य था, इन में धर्म का कमाल था, ये इंसानी कमजोरी से बहुत ऊंचे थे, इनका खिताब 'जिन' है, जिन्होंने मोह माया को और मन और काया को जीत लिया था। ये तीर्थंकर हैं, ये परमहंस हैं, इनमें तमन्ना नहीं थी। बनावट नहीं थी, जो बात थी साफ साफ थी। तुम कहते हो कि ये नग्न रहते थे, इस में ऐब क्या है? परम अंतर्निष्ट, परम ज्ञानी कुदरत के सच्चे पुत्र, इनको पोशिश की जरूरत कब थी?

सुनो एक मरतबह मुसलमानों का सरमस्त नामी फकीर देहली के गली कूचों में बरहना मादरजात होकर घूम रहा था औरङ्गजेब बादशाह ने देखा; तन पोशिश के लिये कपडे भेजे. फकीर मजजूब और वली था, कह कहा मारकर हंसा

कलम दावात कागज पास था, एक रुबाई लिखी और बादशाह के खिलअत को यों हीं वापस कर दिया। रुबाई यह थी ?

आँकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद
मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद॥
पोशानीद लबास हर किरा ऐबे दीद।
वे ऐबेरा लिबवास उर्यानी दाद॥

भावार्थ, जिसने तुमको बादशाही ताज दिया उसी ने हमको परेशानी का सामान दिया जिस किसी में कोई ऐब पाया उस को लिबास पहनाया और जिनमें ऐब न पाए उनको नंगेपन का लिबास दिया.

ये लाख रुपये का कलाम है और वह इन जैनी महात्माओं की पाक जिंदगी के दरबहाल है। फकीरों की उरयानी देखकर तुम क्यों नाक भौं सकोड़ते हो ! उनके भावों को क्यों नहीं देखते ! सिद्धांत यह है कि आत्माको शारीरिक बंधन से और तालुकात के पोशिश से आजाद करके बिलकुल नंगा कर लिया जाय ताकि इसका निज रूप देखने में आवे। वे आत्मज्ञानी थे आत्मा का साक्षात्कार कर चुके थे। यह ऐबकी बात क्या है ? तुम्हारे लिए ऐब हो, बस इतनी ही बातपर तुम नफरत करते हो और हकीकत को नहीं समझते. तुमको क्या कहा जाय तुम ईश्वर कुटी में रहने वालों को अपने ऐसा आदमी समझते हो यह तुम्हारी गलती है या नहीं ?

महावीर स्वामी जैनियों के आखरी व चौबीसवें तीर्थंकर थे। कौम के राजपूत क्षत्रिय, इक्ष्वाकुवंश के भूषण, रघुकुल के रत्न, इनका जहूर पार्श्वनाथ से ढाई सौ वर्ष बाद हुआ था। पैदाइश की जगह क्षत्रीयकुंड बताई जाती है जिसका राजा सिद्धार्थ था। ये उसी के लड़के थे मां का नाम त्रिशला था। और मुबारिक थे वे मा, बाप, जिनके घर में यह गोहर बेबहा पैदा हुआ था। वे सिद्धार्थ के राजा के वारिस होकर नहीं आए थे बल्कि ऋषभदेव के धर्म देश के राजा होने के लिए जहूर किया था। इफ्तदाही से चित्त में तीव्र वैराग्य था, साधुओं की सङ्गत से खुश होते थे, योग और ज्ञान के मसाइल की गुत्थी खूब सुलझाते थे।

महावीर स्वामी वली मादरजात थे। दिलके नरम दयावंत धर्म और क्षमा मिजाज में कूट २ कर भरी थी। इत्यादि

(२) श्रीयुत महा महोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण M. A. PH, D. F. I. R. S. सिद्धांत महोदधि प्रिंसपिल संस्कृत कालिज कलकत्ता ने तारीख २७ दिसम्बर सन् १९१३ को बनारस में व्याख्यान दिया था जिसका सारांश इस प्रकार है:—

जैन साधु एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करने के द्वारा पूर्ण रीति से व्रत, नियम, और इंद्री संयम का पालन करते हुए जगत के सन्मुख आत्म संयम का एक बड़ा ही उत्तम आदर्श प्रस्तुत करते हैं। एक गृहस्थ का जीवन भी जो जैनत्व को लिए हुए है इतना अधिक निर्दोष है कि हिंदुस्तान को उसका अभिमान होना चाहिए।

जैन साहित्य ने न केवल धार्मिक विभाग में किंतु अन्य विभागों में भी आश्चर्य जनक उन्नति प्राप्त की है। न्याय और अध्यात्म विद्या के विभाग में इस साहित्य ने बड़े ही ऊंचे वि-

काश और क्रम को धारण किया न्याय दर्शन जिसे ब्राह्मण ऋषि गौतम ने बनाया है अध्यात्म विद्या के रूप में असम्भव हो जाता। यदि जैन और बौद्ध अनुमान चौथी शताब्दि से न्याय का यथार्थ और सत्याकृति में अध्ययन न करते, जिस समय, मैं जैनियों के न्यायावतार, परीक्षा मुख, न्यायप्रदीपिका, आदि कुछ न्याय ग्रंथों का सम्पादन और अनुवाद कर रहा था उस समय जैनियों की विचार पद्धति यथार्थता, सूक्ष्मता, सुनिश्चितता, और संक्षिप्तता, को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था और मैंने धन्यवाद सहित इस बात को धारण (नोट) किया है कि किस प्रकार से प्राचीन न्याय-पद्धति ने जैन नैयायिकों के द्वारा क्रमशः उन्नति लाभ कर वर्तमान रूप धारण किया है, इत्यादि।

(३) फादर अबे० जे० ए० डूबाई साहब मैसूर देश में प्रसिद्ध पादरी थे आपने फ्रांसीसी भाषा में भारत के लोगोंका हाल लिखाहै "लार्ड विलयम बेंटिङ्क (Lord william Bentin-ck) जो हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल (Governor General) रह चुके हैं उन्होंने भी उस पुस्तक की बहुत प्रशंसा लिखी है इस पुस्तक की भूमिका के अन्त में सम्पादक ने इस प्रकार लिखा है:—

Fr. Abbe J. A. Dubois, Christian missionary states in the "Description of the Character, manners and customs, of the people of India and of their institution, religious and civil." as following:—

"I have subjoined to the whole an appendix containing a brief account of the Jains, of their doctrines the principal points of their religion and their peculiar customs.

Other writers possessing more information than I do, will hereafter instruct us more fully concerning this interesting sect of Hindus and particularly respecting their religious worship, which probably at one time was that of all Asia from Sibiria to Cap. Comorin, north to south, and from the caspian to the gulf of Kamaschatka, fromwest to East, &c.—

अर्थ—मैंने अंत में एक (Appendix) लगाया है, जिस में मैंने जैनियों और उन के मन्तव्य, उन के धर्म की बड़ी २ बातें और विशेष रीति रिवाजों का वर्णन किया है। मुझ से अधिक ज्ञान वाले अन्य लेखक महाशय हिंदुओं की इस लाभदायक जाति और विशेष उनकी धर्म संबंधी पूजा के हाल से हमको आइंदा अधिक परिचित करेंगे। यह पूजा किसी समय में अवश्य सारे एशिया (Asia) में अर्थात उत्तर में साईबिरिया (Sibiria)से दक्षिण रास कुमारी (Cape Comorin) तक और पश्चिम में कैस्पियन झील (Lake Caspian) से लेकर पूर्व में कमस्कटका की खाड़ी (Gulf of Kamaschatka) तक फैली हुई थी, इत्यादि। क्या इस से अधिक स्पष्ट और विश्वास योग्य अन्य कोई साक्षी हो सकती है?

(४) बाबू प्यारेलाल जी साहब जिमींदार, बरोठा। जिन्होंने अनेक उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं उन्होंने "हिंदुस्तान कदीम" नाम की उर्दू की पुस्तक लिखी है जिस में आपने जैन धर्म युरोप (EUROPE) में भी फैला हुआ था आदि अनेक लेख लिखे हैं पर कथन बढ़ने के भय से यहां सिर्फ 'अफ्रीका' (Africa) में भी जैन धर्म फैला हुआ था इस विषय में संक्षेप लेख लिखा जाता है उसके पृ०, ४२ पर इस प्रकार लिखा है:—

"जिस प्रकार युनान में हमने साबित किया कि, हिंदुस्तान के समानवाचक (हमनाम) शहर और पर्वत विद्यमान हैं

इसी प्रकार मिश्र देश में जाने वाले भाई भी अपने प्यारे वतन (जन्म भूमि) को नहीं भूले । उन्होंने भी वहीं एक पर्वत का नाम Meroe (सु—मेरू) रक्खा । दूसरे पर्वत का नाम Caela (कैलाश) रक्खा । एक झील का नाम वहां (Menza Lake) (मनसा) मौजूद है । एक शहर का नाम भी On ग्राम है । एक सूबा (Gurna) गिरनार है जिस में मंदिर और मूर्तियां गिरनार जैसी आज तक मिलती हैं जो अवश्य वहां के ही लोगों ने बसाया होगा" इत्यादि ।

ऊपर जिस गिरनार का वर्णन आया है वह जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ जूनागढ़ के पास काठीयावाड़ में है जहां से २२ वें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ स्वामी मोक्ष को पधारे थे ।

आगे चलकर इसी पुस्तक के पृष्ठ ४३ पर इस प्रकार लिखा है:—

"कुछ शहरों पर ही मौकूफ नहीं । मिश्र के बहुत से राजाओं के खालिस नाम संस्कृत भाषा के हैं, जैसे (Tirtheka) तीर्थंकर जैनी फिरके के पुजारी ।"

(५) पं० लेखराम जी आर्य्य समाजी ने 'रिसाला जेहाद' नामा पुस्तक में पृ० २५ पर एक नकशा उन देशों का दिया हुआ है । जिन में मुसलमानों का मत फैला, उसी नकशे की कैफियत के खाने में देशों के नाम के सामने अन्य धर्मों के नाम भी लिखे हुवे हैं, जो वहां किसी समय में उन देशों में फैले थे, उस में मिश्र (Egypt) और नाटाल (Natal South Africa) देशों के सामने जैनी भी लिखे हैं भावार्थ पण्डित जी के लेखानुसार मिश्र नाटाल आदि देशों में भी जैन धर्म की ध्वजा फहरा रही थी ।

(६) "Oriental" October 1802, page No. 23, 24) "ओरियंटल" पत्र माह ओक्टूबर सन् १८०२ के पृ० २३ व २४ पर "भारत वर्ष में सब से पुरानी इमारत" नामा लेख

में भा जनिया का मिश्र देश से सम्बन्ध लिखा है स्थानाभाव से उस लेख को यहां प्रकाशित नहीं किया गया सो पाठकगण क्षमा करें—

इन उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट तौर पर सिद्ध होता है कि जैन धर्म किसी समय में सारे 'एशिया, युरोप, अफ्रीका आदि देशों में भी फैला हुआ था—

अब मैं आप लोगों के सामने कुछ अजैन ग्रन्थों के प्रमाण रखता हूं सो कृपया ध्यान पूर्वक पक्षपात तजकर विचार करें—

महाभारत के आदि पर्व अध्याय ३ श्लोक २६ में लिखा है कि—

साधयामस्तावदि त्युक्त्वा प्रातिष्टतो त्तङ्कस्ते कुण्डलेगृही त्वा सोऽपश्यदथ पार्थिनग्नं क्षपणकमा- गच्छन्तंमुहुर्मुहुर्दश्य मानमदृश्य-मानंच ॥१२६॥

भावार्थ, मैं यत्न से जाऊंगा ऐसा कह कर उत्तंक ने उन कुण्डलों को लेकर चल दिया उसने रास्ते में नग्न "क्षपणक" को आते हुए देखा—

अद्वैत ब्रह्म सिद्धि का बनाने वाला "क्षपणक" को "जैन-साधु" लिखा है देखो (कालकत्ते की छपी हुई पृ० १६७)

"क्षपणका जैन मार्ग सिद्धान्त प्रवर्त का इति केचित,,

अर्थ "क्षपणक" जैनमत के सिद्धांत को चलाने वाले कोई होते हैं—

उपरोक्त कथन सिद्ध करता है कि महा भारत के समय जैन सिद्धांत को चलाने वाले क्षपणक (जैनसाधू) मौजूद थे—

मत्स्य पुराण के २४ वें अध्याय में लिखा है कि—

गत्वाथ मोहपामास रजिपुत्र न बृहस्पतिः ।
जिनधर्म समास्थाय बेद वाह्यं सवेदवित ॥

अर्थ—उनरजि के पुत्रों को भी "बृहस्पति जी" ने उनके पास जाकर मोह्या और आज्ञा दी, कि तुम सब "जैन धर्म के आसरे हो जाओ" ऐसा कहकर बृहस्पति जी भी वेद के वाहर मत को चालते भए।

पाठको! जरा विचार कर देखो आप लोगों को मालुम होगा कि वेदों में "बृहस्पति जी" की वहुत प्रशंसा लिखी है इस से यह मतलव निकला कि वेदों के पहिले से बृहस्पति जी हैं और जैन धर्म, वेद और बृहस्पति जी दोनों से भी पहिले का रहा, जैन-धर्म पहिले का ही नहीं वल्के "बृहस्पति जी" जो कि ब्राह्मणों के अति मान्य विद्यासागर गुरु समझे जाते हैं उन्होंने भी "जैन धर्म के आसरे हो जाओ" कहा है—

जैनियों के प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव जिनको "आदि-नाथ" स्वामी कहते हैं उनके स्मरण करने का कितना महात्म्य लिखा है—

शिवपुराण में लिखा है कि—

अष्ट षष्टिषुतीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्।
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत्॥

अर्थ—अड़सठ (६८) तीर्थों की यात्रा करने से जितना फल होता है उतना ही फल श्रीआदिनाथ जी के स्मरण कर-ने पर होता है।

यजुर्वेद संहिता अध्याय ९ वां श्रुति २५ में ऐसा लिखा है कि—

बाजस्य न प्रसव आवभूवेमाच विश्वाभुवनानि सर्वतः सनेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टि वर्धमानो अस्मै स्वाहाः॥

इस श्रुति में श्री नेमनाथ जी की प्रशंसा करते हुए आहुति दी है आप लोगों को अच्छी तरह मालुम होगा कि जैनियों के २२ वें तीर्थंकर का नाम श्री नेमनाथ जी है।

"हनूमान नाटक" (बम्बई के लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस में सम्वत १९५७ में छपा) उसके पन्ने ७ पर यह श्लोक है।

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदांतिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिका ॥
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः ।
सोऽयंवो विदधातु वाञ्छित फलँ त्रैलोक्य नाथ प्रभुः

(अ० १ श्लोक तीसरा)

नोट—आदिनाथ भगवान का जैन सम्वत इस पुस्तक के आदि से जानना ।

॥ धर्म ॥

धर्म उसे कहते हैं जो वस्तु के स्वभाव को प्रगट करता है यानी "वस्तु स्वभावो धम्मो" जो हमारा निज स्वभाव केवलज्ञान है उसका प्रगट होना जैसे अग्निका स्वभाव उष्णता इत्यादि। धर्म जीव के चलने में सहाई होता है जैसे मछली के चलने में जल सहायक है जो २ धर्म के विरुद्ध कार्य है उसको अधर्म कहते हैं, धर्म अधर्म अनादि है। धर्म हमारा निज स्वभाव है इसको सब मानेंगे यानी हमारा यह स्वभाव है कि:—

(१) हमको कोई न मारे पस हमको भी किसी जीव का घात नहीं करना चाहिये।

(२) हम से कोई झूँट नहीं बोले पस हमको भी झूठ नहीं बोलना चाहिये ।

(३) हमारी कोई चोरी न करे पस हमको भी चोरी नहीं करनी चाहिये । इत्यादि २

What's ill to self do it not against Others.

धर्म स्वभाव आप ही जान ।
आप स्वभाव धर्म सोई जान ॥
जब वह धर्म प्रगट तोहे होइ ।
तब परमातम पद लख सोइ ॥

अथवा इस आत्मा का गुण अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य और अनंत सुख जो है वह घातिया कर्मों के क्षय करने पर आत्म स्वभाव केवल ज्ञानादि प्रकट होता है अथवा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संजम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य दश लक्षण रूप धर्म है, तथा रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र) स्वरूप है तथा जीवन की दया रूप धर्म है ऐसे पर्याय बुद्धी शिष्यनि के समझाने के अर्थ आचार्यों ने धर्म शब्द कूं चार प्रकार वरनन किया तोहू वस्तु जो आत्मा ताका स्वभाव ही दश लक्षण है। क्षमादि दश प्रकार आत्मा का ही स्वभाव है। सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्र हू आत्मा तै भिन्न नहीं । दया है सो हू आत्मा का ही स्वभाव है । यानी "अहिंसा परमो धर्मः" यह धर्म जीव मात्र का धर्म है जो जिनेंद्र भगवान करि कहा गया है । धर्म अनादि है. स्वर व्यञ्जन अनादि हैं। धर्म तीर्थंकरों केवल ज्ञानियों के मुख से प्रगट होता है। जैसे कमल के उत्पन्न होने का स्थान सिर्फ जल है ऐसा भगवान जिनेंद्र करि कहा हुआ धर्म इसको जैन धर्म कहते हैं या सनातन धर्म भी कहते हैं। जो इस धर्म को धारण करता है उसे ज्ञानी या श्रावक कहते हैं यदि कोई जैन कुल में उत्पन्न हो, मिथ्यात और कुसंगति के प्रसङ्ग से धर्म के विरुद्ध आचरण करे या मनमानी तान गावे तो उसके दृष्टांत से जैन धर्म पर आक्षेप नहीं

हो सक्ता है।

जैन धर्म के उसूलों को पढ़िए अथवा उनका मनन करिए तो ज्ञात होगा कि वह अमूल्य रत्न है। इस बात को सत्य प्रमाणिए कि यदि जैन धर्म में जीव लग जावे तो वह अपने को धन्य समझेगा। बाजार में हम एक धेले की हांडी लेने जाते हैं उसको खूब टंकारा देकर परीक्षा करते हैं कि फूटी न हो, जो पानी भरने पर सब निकल जावे। क्या भाइयों हमको भी धर्म परीक्षा नहीं करना चाहिए? अवश्य करना चाहिए यह हमारे परभव का सुधार करने वाला और सार वस्तु है। हांडी जो,असार उसकी जांचकरें और सार वस्तु"धर्म"को जांच न करें। इसका न्याय करना हर स्त्री पुरुष का परम कर्तव्य होना चाहिए। पस इन चार रत्नों (देव गुरु धर्म, शास्त्र) का हर एक को परखना उचित है प्रमादी नहीं रहना, यथावत धर्म वही जीव धारण कर सक्ता है जो प्रमादी (आलसी) न हो और विनयवान हो। विनय से विशेष गुण ग्रहण होते हैं जैसे एक बरतन में कड़ी कड़ी सूखीकोंपलें भरिए और उस ही वर्तन में हरी नरम नरम कोंपलें उसी जाति की भरिए तो यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि हरी हरी कोंपलों की तादाद लकड़ी से कई गुनी ज्यादा होगी। इसी तरह विनयवान जीव के हृदय में यह जैन धर्म प्रवेश करता है धर्म का मूल ही "विनय" है, विनय पांच प्रकार का है।

दर्शन विनय—आत्मा और पर का भेद जानना, सम्यगदर्शन के धारक में प्रीति करना।

ज्ञान विनय—ज्ञान का आदर करना बहुत आदर से पढ़ना ज्ञानी जन और पुस्तक का बड़ा लाभ मानना।

चारित्र विनय—अपनी शक्ति प्रमाण चारित्र धारण में हर्ष करना, दिन २ चारित्र की उज्जलता के अर्थि विषय कषायनि को घटावना। तथा चारित्र के धारकानि के गुणानि में अनुराग स्तवन आदर करना सो चारित्र विनय है।

तप विनय—इच्छा कू रोक मिले हुए विषयन में संतोष कर ध्यान स्वाध्याय में लगना और अनशनादि करना काम के जीतने को, सो तप विनय है।

उपचार विनय—पंच परमेष्ठी का हर तरह विनय सो उपचार विनय है। इस के दो भेद हैं प्रत्यक्ष विनय यानी पंच परमेष्ठी के सन्मुख विनय करना और "परोक्ष विनय" यानी पंच परमेष्ठी का चिंतवन करना।

विनय वादी के ३२ भेद होते हैं यानी:—
मन वचन काय और दान। इन चार से आठ का विनय करना। यानी—माता, पिता, देव, नृप, जाति, बाल, वृद्ध, और तपस्वी।

॥ ग़ज़ल ॥

धर्म वो चीज़ है भाई कि जिसकी शक्ति न्यारी है।
रोग और सोग भी टारे यह उस में सिफ़त भारी है॥
अरोगी हो गए कुष्ठी दरिद्री धन को धारे हैं।
अग्नि जल डर जहां होवे धर्म वो मदद गारी है॥
शूली से सेठ को तारा, किया श्रीपाल दधिपारा।
अग्नि में फूल कर दीने जहां सीता विठारी है॥
वो कपटी चोर अंजनसा भी पहुँचाया मुक्तिपुर में।
मिली जंगल में लछमन राम को सेना जो भारी है॥
जगत के देव गुरु देखे किसी के संग नारी है।
कोई क्रोधी कोई लोभी नाम ब्रह्मा मुरारी है
धर्म सब जगत में मानें नहीं जाने हैं गुण उसका।

धरम वो सारथी हैगाकि जिसकी मुक्ति नारी है ॥
सेवक तुम हो गए मूरख जो अवतक धर्म ना जाना ।
धरम हिंसा में गहकर तैंने अपनी गति विगारी है ॥

॥ दीप मालिका ॥

प्रिय बंधु वर्गो ! २४ वें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी का धर्म चक्र चल रहा है, वे कार्तिक कृष्णा अमावस्या के सूर्य निकलने से पेहले मोक्ष पधारे थे यानी सिद्ध होगए, उसी समय उनके गणधर श्री गौतम स्वामी को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था चूंकि केवल ज्ञान होने पर कुछ रात्रि बाकी थी, देवों ने रत्नों के दीपक जलाए और मनुष्यों ने घी कपूरादि के। सबने केवल ज्ञान और मोक्ष लक्ष्मी का पूजन किया इस यादगार में दीप मालिका (दिवाली) सब दूर मनाया जाने लगा मगर कुछ काल पश्चात काल दोष से लक्ष्मी देवीकी कल्पना होगई। बहुतसे तो यह विचार करते हैं कि लक्ष्मी देवी रात्रि में घर २ आती है सो उसके आगमन के लिये बड़ी तय्यारी करते हैं ताकि वह प्रसन्न होकर द्रव्य का थाल गृह में कर देवे।

दक्षण प्रांत, गुजरात प्रांत में तो पंचागों में भी इस दीपावली से नया वर्ष प्रारम्भ होता है। प्रायः सब जगह नई वहियां इसी दिन से बदलते हैं। महावीर स्वामी श्री पावापुर जी सिद्ध क्षेत्र से निर्वाण हुए थे। डाकखाना गिरियक जिला पटना बंगाल है। वह स्थान बड़ा सुन्दर है जो आनन्द वहां जाने पर प्राप्त होता है उसे केवली भगवान ही जानते हैं। हमारी वन्दना वारम्वार होवे। इस पवित्र दिन में उत्तम कार्य पूजा दान धर्मादि करने चाहिये। जूआ आदि पापारम्भ रोकना चाहिए। कृपया इस पवित्र त्योहार को दिवालिया त्योहार न बनावें।

"जूआ समान इहलोक में, आन अनीति न पेखिये।
इस विसनराय के खेलको, कौतुक हू नाहिं देखिये॥

जैनियों को अपनी २ वहियों पर विक्रम सम्वत के साथ महावीर सम्वत जो अब २४५२ कार्तिक शुक्ला १ से शुरू हुआ डालना चाहिये। उसके साथ २ श्री रिषभ संवत ७९ अंक का भी लिखना चाहिये यानी इस प्रकारः—

॥ ॐ ॥

नमः सिद्धेभ्यः ।

श्री परमात्मनेनमः ।　　　　श्री वीतरागायनमः ।

श्री जिनायनमः ॥

श्री ऋषभदेवायनमः * * * श्री महावीरायनमः ।

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१८१९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९-
९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९६०४५२.

श्री ऋषभ निर्वाण सं० ७६ अङ्क प्रमाण

श्री महावीर निर्वाण सं० २४५२

यों तो धर्म थोढा वहुत सभी साधन करते हैं परन्तु यथावत धर्म क्षत्री बीर पुरुष ही धारण कर सकते हैं । जिनका ममत्व कनक कामिनी में जादा है. वे प्रायः कम धारण कर सकते हैं इस लिये लोभ और काम को जीतना योग्य है ।

हमको मान कषाय के वस कोई धर्म विरुद्ध विषय या अनुचित कथन नहीं पोषना चाहिये । जन धर्म का ऊसूल आत्मा को निरमैल करना है । जिनेन्द्र भगवान की पूजा का अचित्य फल है परंतु हमारी क्रिया वाज वक्त ठीक नहीं वनती इससे लौकिक में भी उच्च प्रतिष्ठा प्रगट नहीं होती है । हम में से वहुतों ने तो मन्दिर को स्नान स्थान Bath room समझ लिया है मंदिर जी में तेलादि लगाकर गए स्नान किया दर्शन कीया या किसी पुजारी से अर्घ ले चढ़ा घर वापिस आगए सो ऐसे भाइयों से प्रार्थना है कि सव कार्यों का नफा नुकसान सोचना चाहिए । पुण्य का संचय जादा करना चाहिए । भावों को मंदिर में स्थिर रखना चाहिए । कई मतमतांतर के भेद से हम जैन धर्म को तेरापंथ कहते हैं । जैनी पूजा करने से पहिले अर्हन्त भगवान की स्थापना कर लेते हैं क्योंकि वे निर्दोष देव को पूजते हैं । धर्म में प्रत्यक्ष और परोक्ष कथन से दो भेद हैं प्रत्यक्ष कथन को कसौटी पर परख लीजिए और परोक्ष को अनुमान से । जो केवल ज्ञान द्वारा कहा हुआ है मानलेवें । जैसे हम यह जानें कि आप अपने निज कार्य में झूठ नहीं बोलते हैं तो यह स्वयं न्याय से सिद्ध है कि आप दूसरे के कार्य में झूठ नहीं बोलते हैं । पस आप के बचन सत्य प्रमाण हैं इसी तरह धर्म के शास्त्र की चरचा जाननी यानी प्रत्यक्ष ठीक है तो परोक्ष स्वयं ठीक है ।

व्रतों का स्वरूप

मुनि के महाव्रत सकल व्रत होते हैं और श्रावक के १२ व्रत होवे हैं यानी:—

५ अणुव्रत (अहिंसा, सत्य, परस्त्री त्याग, चोरी त्याग परिग्रह प्रमाण)

३ गुण व्रत (दिग व्रत, देश व्रत, अनर्थ दंड त्याग)

४ शिक्षा व्रत (सामायक, प्रोषधोपवास, अतिथि संविभाग यानी वैयावृत, भोगोपभोग परिमाण)

इनका पूरा २ वर्णन जैन शास्त्रों से जानना।

श्री गोमट्टसार कर्म कांड छटे अधिकार में ८०२ वें श्लोक में कहा है:—

अर्हत्सिद्ध चैत्यतपः श्रुतगुरु धर्म संघ प्रत्यनीकिः।
बध्नाति दर्शन मोह मनंत सांसारि को येन ॥

अर्थ—जो जीव अरहंत सिद्ध प्रतिमा तपश्चरण निर्दोष शास्त्र निर्ग्रंथ गुरु वीत राग प्रणीत धर्म और मुनि आदि का समूहरूप संघ—इनसे प्रतिकूल हो अर्थात इनके स्वरूप से बिपरीति का ग्रहण करै वह दर्शन मोह को बांधता है कि जिसके उदय से वह अनन्त संसार में भटकता है—

अथ

चार आराधना स्वरूप

॥ लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

नष्ट किये रागादि जिन, तिन पद हिरदय धार ।
रूप चार आराधना, कहूं स्वपर हितकार ॥ १ ॥

जोगीरासा-सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप चार अराधन जेहैं ।
भव सागर से भव्य जीवन कूं निश्चै पार करे हैं ॥
इन संक्षेप स्वरूप बखानूं सुनकर कर सरधाना ।
फिर इनके अनुसार चलो भव्य जो पाओ शिवथाना ॥ २ ॥
सांचें देव सुश्रुत सांचें गुरुकी दृढ़ श्रिद्धा धारो ।
ताही को जिन आगम मांही सम्यग्दर्श उचारो ॥
हित उपदेशी बीतराग सर्वज्ञ देव सांचे हैं ।
तत्व स्वरूप यथारथ भाखैं सोई श्रुत आछे हैं ॥ ३ ॥
विषय आश आरंभ परिग्रह जिनके बिलकुल नाहीं ।
ज्ञान ध्यान तप लीन रहैं सतगुरु ते जानो भाई ॥
संशय विपरिय अनध्यवसायजु बिन तत्वन को जानैं ।
ताही को आगम के ज्ञाता सम्यग्ज्ञानी मानैं ॥ ४ ॥
जीव अजीव करम का आश्रव बंध अरु संवर भाई ।

निर्जर मोक्ष तत्व ये सातों सार जगत के माँई ॥
दर्शन ज्ञान मई सुजीव विन जीव पंच विधि जानो ।
पुद्गल धर्म अधर्म और आकाश काल युत मानो ॥ ५ ॥
शुभ अरु अशुभ त्रियोग जानिये कर्माश्रव दुख दाता।
जीव साथ संबंध कर्म हो सोही बंध कहाता ॥
समदमादि कर कर्म रोकना संवर जानो सोई ।
क्रमवर्ती कर्मों का झरना सोई निरजर होई ॥ ६ ॥
सकल कर्म का एक साथ कर देय नाश जो ज्ञाता ।
ताकू मोक्ष कहत श्रुत पारग सुख अनन्त को दाता ॥
अब चारित आराधन वरनू तेरह भेद कहाई ।
पांच महाव्रत पांच समिति हैं तीन गुप्ति युत भाई ॥ ७ ॥
दया काय छैहों की पालें सोय अहिंसा व्रत है ।
सत्य महा व्रत दूजो जानो सत्य बोलते नित है ।
बिन दीये नहिं लेवैं कुछ भी सो अचौर्य व्रत जानो ।
माता भगनी सम तिय समझैं ब्रह्मचर्य सो मानो ॥ ८ ॥
चतुर बीस बिधि परिग्रह में से रखैं न तिल तुष भर है ।
परिगृह त्याग महाव्रत पंचम अब पंच समिति उचर है ॥
जीव रहित पृथवी को लखिकर चलै समिति ईया है ।
संशय रहित वचन प्रिय बोलैं भाषा समिति क्रिया है ॥ ९ ॥
एक बार निरदोष अशन लै समिति एषणा जानो ।
धरै उठावें देख यही आदान निक्षेपण मानो ॥
त्रस स्थावर जीवों को पीडा नहिं होवै जासे ।
क्षेपै मला मूत्रादि जहांही समिति क्षेपण खासे ॥ १० ॥
करै निरोध मन वचन काया भले प्रकार सुज्ञानी ।

याही कूँ त्रिय गुप्ति जानिये अब तप कहूं वखानी ॥
अनशन ऊनोदर व्रत संख्या रस परित्याग करैं हैं।
विविक्त शयनं काय क्लेश तप बाह्य छै उचरैं हैं॥ ११॥
प्रायश्चित्त विनय वैया व्रत स्वाध्याय व्युतसर्ग।
ध्यान सहित छै अभ्यन्तर तप दाता सुख अप वर्ग॥
इन्द्रियादि मद नाशन भोजन त्यागे अनशन होई।
अथवा न्यून भरै उर अपनो ऊनोदर तप सोई॥ १२॥
भोजन करूं नियम ऐसें सें व्रत संख्या यह जानो।
दुग्धादिक रस के त्यागन को रस परि त्याग सुमानो॥
शयन बैठना करै इकन्तं विविक्त शयनं योंहै।
देह नेह तज करैं विकट तप कायः क्लेश कह्यो है॥ १३॥
दोष दूर कूं दंड लैंय गुरु से प्रायश्चित मानो।
गुण गुणियों का आदर करना सो तप विनय वखानो॥
पूज्य जनों की सेवा करना सो तप वैया व्रत है।
ज्ञानाभ्यास जु करैं करावैं सो स्वाध्याय सुतपहै॥ १४॥
बाह्य अभ्यन्तर संग तजे व्युत सर्ग सुतप बरनाई।
चित्त करै एकान्त ध्यान यह द्वादश तप सुख दाई॥
या प्रकार व्यवहार अराधन कही तनक मैं भाई।
अब स्वरूप निश्चय कछु भाषूं ताहि सुनो मन लाई॥ १५॥
गुण अनंत को धाम निजातम सबसे भिन्न निराला।
ऐसी दृढ श्रद्धा है जाकैं सो सम्यक्ती आला॥
अजर अमर अविनाशी निरभय सुख आदिक गुणधामी।
जानैं यों निज आतम कूं सो सम्यग्ज्ञानी नामी॥ १६॥
निज आतम के गुण समूह में होवै निश्चल लीना।
ताही को सम्यक चारित्री कहते हैं परवीना॥

होय अनंती इच्छा मन में तिन्हैं हर्ष युत रोकैं ।
सोई सम्यक तपका धारी सो शिव सुख अब लोकैं ॥१७॥
निश्चय आराधन का भाई स्वरूप यह तुम जानों ।
दोउन को उर भीतर धर के करिये निज कल्यानो ॥
इन दोउन के धारे बिन नहिं होगा तुम निस्तारा ।
भव सागरमें भवि जीवन कूं इनका एक सहारा ॥ १८ ॥
यह सन्सार असार यामें सार कछु नाहिं दिखाई ।
मात पिता सुत तिय वैभव सब देखत देख नसाई ॥
रक्षा करै मरन सें तुमरी ऐसो नाहिं दिखावै ।
विना बात निज रक्षा कारन क्यों पर कूं अपनावै ॥ १९ ॥
अनंत काल से या जगमांहीं दुख ही दुख तुम भोगे ।
यह जग सब दुखही का घर है या तज सुख पाओगे ।
बुरे भले जो कर्म किये हैं तुमने या जग मांही ।
तिनके फल तुम इकले भोगो और भोगता नाहीं ॥ २० ॥
देह जीव जब जुदे २ हैं तुमरे सुन ये भैया ।
फिर क्यों कर हों एक तुम्हारे पुत्र पितादिक भैया ॥
घृणित वस्तु की देह बनी है यामें शुच कछु नाही ।
याते यासूं प्रेम तजौ अब समझ सोच मनमांही ॥ २१
मन वच काय त्रियोग चले ते होय करम का आना ।
याहि तजो तुम मेरे भाई ये दुख देवै नाना ॥
जैसै बनै तिसी बिधि आश्रव रोको मेरे भाई ।
याही के रोकन में अपनी जानो खूब भलाई ॥ २२ ॥
अपनें आप करम जो झरहैं नित सो काज न सर है।
बल पूर्वक तुम कर्म खिपाओ जो पाओ शिव घर है॥

लोक तुंग चौदह राजू है या में फिरा अपारा ।
समता धारे विन सब थानक दुखही दुक्ख निहारा ॥ २३

इन्द्र नरेन्द्रादिक की पदवी मिलना दुरलभ नाही ।
सम्यग्ज्ञान पावना दुरलभ कह्यो श्रुतों के माही ॥
सोलह कारण कूं तुम जानो सर्व सुक्खकी दाता ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन त्रय धर्म जानियै भ्राता ॥ २४ ॥

दया मई है धर्म धर्म दश विधि भी किया बखाना ।
वस्तु स्वभाव धर्म कहते हैं अर्थ सबन इक जाना ॥
मोह भाव कूं त्याग धर्म कूं पालो मेरे भाई ।
जासें शिव नगरी के राजा हो वो यहां से जाई ॥ २५ ॥

नर भव पाय काज यह करना चूकै सोय गमारा ।
फिर यह समय कठिन है मिलना श्रीगुरु येम उचारा ॥
आराधन आराधो भाई जबतक दम में दम है ।
पद्मावतिकी भूल सुधारो हाथ जोर वह नमि है ॥२६॥

॥ दोहा ॥

दर्शन ज्ञान चारित्र तप, हैं सब सुख दातार ।
ये मम घट मन्दिर वसो, करकें निश्चल प्यार ॥२७

॥ इति ॥

चार आराधना स्वरूप शुभम्

राजा मधु ने समाधि मरण व मुनि अवस्था धारण की ताका कथन तथा सप्त ऋषियों का चैत्यालय विषय उपदेश श्री—पद्मपुराण (जैन रामायण) से संक्षिप्त उधृत—

श्री पद्मपुराण पर्व (८९) नवासी प्रारम्भ—संक्षेप से।

जब श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण जी का तथा उनकी रानियाँ सीता और विसल्या का अजोध्या में राज्याभिषेक हो चुका। तब महा प्रीति से भाई शत्रुघन से कहते भए कि जो देश तुम्हें रुचे सो लेवो। तब शत्रुघन ने मथुरा मांगी। तब राम बोले कि वहाँ राजा मधु का राज्य है और वह रावण का जमाई है अनेक युद्धों का जीतन हारा उसको चमरेन्द्र ने त्रिशूल रत्न दिया है वह हरवंशियों में सूर्य समान है उसका पुत्र लवणार्णव नाम का है दोनों महाशूरवीर हैं इस लिए मथुरा टार और राज्य लेवो। तब शत्रुघन ने न मानी और कहा कि मैं दशरथ का पुत्र नहीं जो मधु राजा को न जीतूं। इत्यादिः—

और मथुरा को रवाना हुआ। तब राम बोले कि जब राजा मधु के हाथ त्रशूल रत्न न होवे उस समय युद्धकरियो। मथुरा नगरी के यमुना तट पर डेरे जा लगाए' और मालुम हुआ कि राजा मधु रानियों सहित वन क्रीड़ा करे है आज छटा दिन है सब राज काज तज प्रमाद के वश भया है विषयों के बंधन में पड़ा है। मंत्रियों ने बहुत समझाया सो काहू की बात धारे नहीं। जैसे मूढ़ रोगी वैद्य की औषधि न धारे। सो राजा शत्रुघन बलवान योद्धाओं के सहित अर्ध रात्रि के समय सर्व लोक प्रमादी थे और नगरी राजा रहित थी। सो मथुरा में प्रवेश करता भया और बंदी जनों के शब्द होते भए कि राजा दशरथ का पुत्र शत्रुघन जयवंत होवे। यह सुन लोगों को

महा दुख हुआ। तब उनको धीर बंधाया कि यह राम राज्य है किसी को दुख नहीं होगा। शत्रुघन नगर में जाय बैठा जैसे योगी कर्म नाश कर सिद्ध पुरी में प्रवेश करे। तब राजा मधु वन से महा कोप कर आया परन्तु शत्रुघन के सुभटों की रक्षा द्वारा नगर में प्रवेश न कर सका जैसे मुनि के हृदय में मोह प्रवेश न कर सके और त्रिशूल से भी रहित होगया तथापि महा अभिमानी मधु ने संधि न करी और युद्ध ही को उद्यमी हुआ। तब दोनों तरफ की सैनाओं में युद्ध होने लगा। शत्रुघन के सैना पति कृतांतवक्र ने मधु के पुत्र लवणार्णव को बाणों से वक्षस्थल को छेदा सो पृथ्वी पर आय पड़ा और प्राणांत भया तब पुत्र को देख राजा मधु कृतांतवक्र पर दौड़ा सो शत्रुघन ने ऐसे रोका जैसे नदी का प्रभाव पर्वत से रुके है। तब शत्रुघन के सामने कोई न ठहर सका जैसे जिन शासन के पण्डित स्याद्वादी तिन के सन्मुख एकांतवादी न ठहर सके। तैसे राजा शत्रुघनने मधु का बकतर भेदा जैसे अपने घर कोई पाहुना आवे और उसकी भले मनुष्य भली भांति पाहुनगति करें तैसे शत्रुघन ने शस्त्रों कर उसकी पाहुणागति करता भया अथानंतर राजा मधु, महा विवेकी शत्रुघन को दुर्जय जान आपको त्रिशूल आयुध से रहित जान पुत्र की मृत्यु देख और अपनी आयू भी अल्प जान, मुनियों के बचन चितारता भया अहो जगत का समस्त ही आरम्भ महा हिंसा रूप दुख का देन हारा सर्वथा त्याज्य है। यह क्षण भंगुर संसार का चारित्र इस में मूढ जन राचे इस विषे धर्म ही प्रशंसा योग्य है और अधर्म का कारण अशुभ कर्म प्रशंसा योग्य नहीं महा निंद्य यह पाप कर्म नरक निगोद का कारण है जो दुर्लभ मनुष्य देह को पाय धर्म विषे बुद्धि नहीं धरे हैं सो प्राणी मोह कर्म कर ठगाया अनन्त भव भ्रमण करे है मैं पापी ने संसार असार को सार जाना, क्षण भंगुर शरीर को ध्रुव जाना, आत्म हित न किया, प्रमाद विषे प्रवरता, रोग समान ये इन्द्रियों के भोग भले जान भोगे, जब मैं स्वाधीन था तब मुझे सुबुधि न आई, अब अन्त काल आया अब क्या करूं, घर को आग लगी उस समय तलाव खुदवाना कौन अर्थ। और सर्प ने डसा उस समय देशांतर से मन्त्राधीश बुलवाना और

दूर देश से मणि, औषधी मंगवाना कौन अर्थ इस लिए अब चिंता तज निराकुल होय अपना मन समाधान में लाऊं यह विचार वह धीर वीर राजा मधु घाव कर पूर्ण हाथी चढ़ा ही, भाव मुनि होता भया, अरहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधुओं को मन वचन काय कर बारम्बार नमस्कार कर और अरहन्त सिद्ध साधु तथा केवली प्रणीत धर्म यही मङ्गल है यही उत्तम हैं इनहीं का मेरे शरण है अढाई द्वीप विषे पन्द्रह कर्म भूमि तिन विषे भगवान अरहन्त देव होय हैं वे त्रैलोक्य नाथ मेरे हृदय में तिष्ठो मैं बारम्बार नमस्कार करूं हूं अब मैं यावज्जीव सर्व पाप योग तजे, चारों आहार तजे, जे पूर्व पाप उपार्जे थे तिन की निंदा करूं हूं और सकल वास्तु का प्रत्याख्यान करूं हूं अनादि काल से इस संसार वन में जो, कर्म उपार्जे थे मेरे दुःख-कृत मिथ्या होवो। भावार्थ मुझे फल मत देवें। अब मैं तत्वज्ञान में तिष्ठा तजवे योग्य जो रागादिक तिन को तजूं हूं और लेयवे योग्य जो निज भाव तिनको लेऊं हूं। ज्ञान दर्शन मेरे स्वभाव ही हैं सो मोसे अभेद हैं और जे शरीरादिक समस्त पर पदार्थ कर्म के संयोग कर उपजे वे मोसे न्यारे हैं देह त्याग के समय, संसारी लोक भूमि का तथा तृण का सांथरा करे हैं सो सांथरा नहीं यह जीव ही पाप बुद्धि रहित होय, तब अपना आप ही सांथरा है ऐसा विचार कर राजा मधु ने दोनों प्रकार के परिग्रह भावों से तजे और हाथी की पीठ पर बैठा ही सिर के केशलोंच करता भया, शरीर घावों कर

अति व्याप्त है तथापि महा दुर्धरवीर्य को धर कर अध्यात्म योग में आरूढ़ होय काया का ममत्व तजता भया, विशुद्ध है बुद्धि जिसकी, तब शत्रुघन मधु की परम शान्त दशा देख नमस्कार करता भया और कहता भया हे साधो ! मो अपराधी का अपराध क्षमा करो, देवों की अप्सरा मधू का संग्राम देखने को आई थीं आकाश से कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा करती भई, मधू का वीर रस और शांत रस देख देव भी आश्चर्य को प्राप्त भए फिर मधू महा धीर एक क्षण मात्र में समाधि मरण कर महा सुख के सागर में तीजे सन्तकुमार स्वर्ग में उत्कृष्ट देव भया और शत्रुघन मधु की स्तुति करता महा विवेकी (मधुपुरी) मथुरा में प्रवेश करता भया। गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहे हैं कि प्राणियों के इस संसार में कर्मों के प्रसङ्ग कर नाना अवस्था होय है इस लिए उत्तमजन सदा अशुभ कर्म तज कर शुभ कर्म करो जिस के प्रभाव कर सूर्य समान कांति को प्राप्त होवे धर्म द्वारा शत्रु भी जगत में नर सुख द्वारा पूज्य होवे है सोई सार जो धर्म ताहि ग्रहण करो।
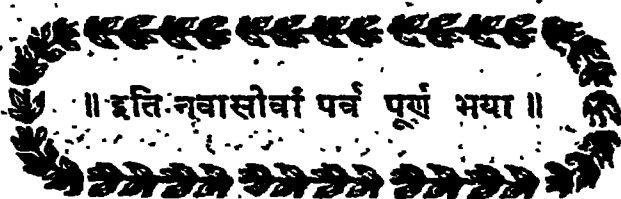
॥ इति नवासीवां पर्व पूर्ण भया ॥

सप्त ऋषि उपदेश

आगें पर्व ९० में चमरेन्द्र जिसने राजा मधू को त्रिशूल रत्न दिया था पाताल से आकर मथुरा नगरी पर कोप किया और मरी फैली।

पर्व ९१ — राजा शत्रुघन अयोध्या गया और जिनेन्द्र भगवान की पूजा रचाई इत्यादि।

पर्व ९२ में आकाश में गमन करण हारे सप्त चारण ऋषि निर्ग्रंथ मुनीन्द्र मथुरापुरी आए जिनके नाम सुरमन्यु, श्रीमन्यु श्री निश्चय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलाल सजयमित्र, सो यह चातुर्मासिक में मथुरा के वन में वट के वृक्ष तले आय विराजे सो मथुरा में चमरेन्द्र द्वारा जो मरी फैली थी। इन सप्तऋषियों के प्रभाव कर नष्ट होगई वे चारण मुनि श्रुति केवली आकाश मार्ग होय कभी पौदनापुर कभी विजयपुर कभी अजोध्या पारणा को आवें। अर्हदत्त सेठ अजोध्या ने विचारा कि चातुर्मास में मुनि गमन न करें यह ऋषि पहले देखे नहीं कहां से आये ये जिन मार्ग विरुद्ध गमन करते हैं सो आहार न दिया उठ गया। तब इसकी पुत्र वधू ने आहार दिया। वे मुनि आहार लेय भगवान के चैत्यालय में

आये जहां द्युति भट्टारक (आचार्य) विराजते थे ये सप्तऋषि ऋद्धि के प्रभाव कर धरती से चार अंगुल अलिप्त चले आये और चैत्यालय में धरती पर पग धरते आए—आचार्य उठ खड़े भये उन्होंने और उनके शिष्यों ने नमस्कार किया फिर वे वंदना कर आकाश मार्गसे मथुरा गये। इनके पीछे अर्हद्दत्त सेठ चैत्यालय में आया और ऋषियों का सर्व वृतान्त जान महा खेद खिन्न भया। और कहने लगा जौं लग उनका दर्शन न करूं तौं लग मेरे मन का दाह न मिटै—

कार्तिक की पूनौ नजीक जान सेठ अर्हद्दत्त महा सम्यक् दृष्टि नृप तुल्य विभूत अजोध्या से मथुरा को सर्व कुटुम्ब सहित सप्त ऋषि के पूजन निमित्त चला।

जाना है मुनों का महात्म जिसने—कार्तिक सुदी सप्तमी के दिन मुनों के चरणों में जाय पहुंचा। वह उत्तम समझ का धारक विधि पूर्वक मुनि वन्दना कर मथुरा में अति शोभा करावता भया यह सुन राजा शत्रुघन मय अपनी माता सुप्रभा के शीघ्र आ मुनियों को नमस्कार कर इस प्रकार कहता भया। हे देव आपके आये इस नगर से मरी गई रोग गए दुर्भिक्ष गया सर्व विघ्न गए सुभिक्ष भया सब साता भई प्रजा के दुख गए सर्व समृद्धि भई जैसे सूर्य के उदय से कमलनी फूले। कोई दिन आप यहां ही तिष्ठो। तब मुनि कहते भए, हे शत्रुघन जिन आज्ञा सिवाय अधिक रहना उचित नहीं यह चतुर्थ काल धर्म के उद्योग का कारण है इस में मुनिन्द्र का धर्म भव्य जीव धारे हैं जिन आज्ञा पाले हैं महा

मुनियों के केवल ज्ञान प्रकट होय है । मुनि सुव्रतनाथ सो मुक्त भए । अब नामि, नेमि, पार्श्व, महावीर, चार तीर्थंकर और होवेंगे । फिर पंचमकाल जिसे दुखमा काल कहिये सो धर्म की न्यूनता रूप प्रवरतेगा । उस समय पाखंडी जीवों कर जिन शासन अति ऊंचा है तो भी आच्छादित होयगा । जैसे रजकर सूर्य का बिम्ब आच्छादित होय । पाखंडी निरदई दया धर्म को लोपकर हिंसा का मार्ग प्रवर्तन करेंगे उस समय मसान समान ग्राम और प्रेत समान लोक कुचेष्टा के करण हारे होवेंगे महा कुधर्म में प्रवीण क्रूर चोर पाखंडी दुष्ट जीव तिनकर पृथ्वी पीड़ित होयगी किसान दुखी होवेंगे प्रजा निरधन होयगी महा हिंसक जीव परजीवों के घातक होवेंगे निरन्तर हिंसाकी बढ़वारी होयगी पुत्र, माता पिता की आज्ञा से विमुख होवेंगे और माता पिता भी स्नेह रहित होवेंगे इत्यादि:—

हे शत्रुघन कलिकाल में कषाय की बहुलता होवेगी और अतिशय समस्त विलय जावेंगे चारणमुनि देव विद्याधरों का आवना न होयगा अज्ञानी लोक नग्न मुद्रा के धारक मुनियों को देख निंदा करेंगे मलिन चित्त मूढ जन अयोग्य को योग्य जानेंगे जैसे पतङ्ग दीपक की शिखा में पड़े तैसे अज्ञानी पाप पंथ में पड़ दुर्गति के दुख भोगेंगे और जे महाशांत स्वभाव, तिन की दुष्ट निंदा करेंगे, विषयी जीवों को भक्ति कर पूजेंगे दीन अनाथ जीवों को दया भाव कर कोई न देवेगा । इत्यादि—

जो कोई मुनियों की अवज्ञा करे है सो मलयागिरि चंदन को तज कर कंटक वृक्ष को अङ्गीकार करे है ऐसा जानकर हे वत्स तू दान पूजा कर जन्म कृतार्थ कर । गृहस्थी को दान पूजा ही कल्याणकारी है और समस्त मथुरा के लोक धर्म में तत्पर होवो । दया पालो साधर्मीओं से वात्सल्य धारो ।

जिन शासन की प्रभावना करो घर घर जिन बिंब थापो, पूजा अभिषेक की प्रवृत्ति करो जिस करि सब शांति हो, जो जिन धर्म का आराधन न करेगा और जिसके घर में जिन पूजा न होगी दान न होवेगा उसे आपदा पीडेंगी जैसे मृग को व्याघ्री भखै तैसे धर्म रहित को मरी भखेगी। अंगुष्ठ प्रमाण भी जिनेंद्र की प्रतिमा जिसके विराजेगी उस के घर में से मरी यूं भाजेगी जैसे गरुड़ के भय न नागिनी भागे ये वचन मुनियों के सुन शत्रुघन ने कही हे प्रभो जो आप आज्ञा करो त्योंही लोक धर्म में प्रवर्तेंगे। अथानंतर मुनि आकाश मार्ग विहार कर अनेक निर्वाण भूमि वंद कर सीताजी के घर आहार को आए सो विधि पूर्वक पारणा करावती भई, मुनि आहार लेय आकाश के मार्ग विहार कर गए और शत्रुघन ने नगरी के बाहिर और भीतर अनेक जिन मन्दिर कराए घर घर जिन प्रतिमा पधराई नगरी सर्व उपद्रव रहित भई, वन उपवन फल पुष्पादिक कर शोभित भए, वापिका सरोवरी कमलों करि मंडित सोहती भई पक्षी शब्द करते भए कैलाश के तट समान उज्वल मंदिर नेत्रों को आनन्दकारी विमान तुल्य सोहते भए और सर्व किसाण लोक संपदा कर भर सुख सो निवास करते भए गिरि के शिखर समान ऊंचे अनाजों के ढेर गावों में सोहते भए स्वर्ण रत्नादिक की पृथ्वी में विस्तीर्णता होती भई सकल लोक सुखी राम के राज्य में देवों समान अतुल विभूति के धारक धर्म अर्थ काम विषे तत्पर होते भए शत्रुघन मथुरा में राज्य करें राम के प्रताप से अनेक राजाओं पर आज्ञा करता सोहे। इस भांति मथुरापुरी का ऋद्धि के धारी मुनियों के प्रताप कर उपद्रव दूर होता भया। जो यह अध्याय बांचे सुने सो पुरुष शुभ नाम शुभ गोत्र शुभ साता वेदनी का बंध करे जो साधुओं की भक्ति विषे अनुरागी होय और साधुओं का समागम चाहे वह मन वांछित फल को प्राप्त होय इन साधुओं के सङ्ग पायकर धर्म को आराध कर प्राणी सूर्य से भी अधिक दीप्ति को प्राप्त होवें हैं।

॥ इति बानवेंवां पर्व सम्पूर्णम् ॥

प्रिय सज्जनो, पंडितों! इस प्रकार शास्त्र व राज धर्म की चरचा सुन यथावत श्रृद्धान करेंगे । इस कथन में जिन बिम्ब घर२ थापने का प्रसंग पाय मैं अल्प बुद्धिवाला दृष्टांत देता हूं कि नगर जैपुर में करीब इस प्रकार ३०० चैत्यालय हैं । मंदिर और चैत्यालय में कुछ फर्क नहीं है। चैत्यालय अनादि कल्याणकारी शब्द है यानी चैत्य—आतमा, आलय—जगह, भावार्थ, आत्म प्रदर्शन—प्राचीन समय में मन्दिर गृह को कहते थे:—जिन "मन्दिर" आज कल चैत्यालय का सूचक है—

श्रीयुत पद्मनन्द आचार्य कृत पद्मनन्द पंच विंशत शास्त्र अध्याय ७ श्लोक २२ में लिखा है कि "किंदुरी के पत्र बरोबर ऊंचा चैत्यालय और जौ बराबर ऊंची जिन प्रतिमा जे करावें हैं तिनके पुन्य की महिमा कौन वर्णन कर सके और तीर्थंकर पद का बन्ध करे हैं । इत्यादि:—

इसी दृष्टांत पर हमारे पिताजी श्रीमान बाबू चतुर्भुजजी गवरमेन्ट पेन्शनर हाथरस, ने श्री महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर सरे बाजार निजी दो दुकानें तोड़कर निर्माण सम्वत २४४६ में किया है!

॥ स्वाध्याय ॥

प्रिय सज्जनो ! अब उन अर्हंतों भगवान परमात्मा की वाणी के बारे में एकाग्रचित हो सुनिए—वह वाणी ही मुख्य कर धर्म मार्ग दिखाने वाली है।

जिनेंद्र भगवान परमात्मा का जो धर्मोपदेश है उसको सरस्वती, सूक्त, आज्ञा, भगवत वाक्य, देव, अङ्ग, आमनाय, सूत्र, प्रवचन, श्रुत, जिनवाणी या जिनवाणी माता शारदादि कहते हैं। उस वाणी को गणधरों ने जो चार ज्ञान (मति, श्रुति, अवधि और मनपर्यय) के धारक होते हैं झेलकर रचना की है। जिन पत्रों पर वह वाणी "लिखी गई है उसको शास्त्र की आगमादि कहते हैं। उसके पढ़ने, सुनने उपदेश करने, चितवन करने तथा प्रश्न करने को स्वाध्याय कहते हैं। यह वाणी अमृत ही है। इसके पाठी हो जाने से "अमर" हो जाता है यानी जन्म मरण रहित हो जाता है। अमर होने का तीन लोक में और कोई दूसरा उपाय नहीं है, जब तक इसका पठन होता है कर्मों की निर्जरा और पुण्य संचय होता है। उस स्थान पर सम्यगदृष्टी देव देवांगना भी सुनने को आते हैं यह शास्त्र प्रमाण है और मुझ मंदबुद्धि को भी इसका कुछ परिचय हो चुका है। तीन लोक का ज्ञान घर बैठे मालुम होता है। लौकिक और पारमार्थिक मार्ग अच्छी तरह दृष्य पड़ता है। श्री मूलाचार जी ग्रंथ में लिखा है कि जो जीव स्वाध्याय करता है वह संसार अंध कूप में नहीं पड़ता है जैसे डोरा सहित सूई नहीं खोती है। आचार्य उपाध्याय साधु मुनीश्वर भी नित्य स्वाध्याय करते हैं। श्री आदि पुराणजी पर्व २० श्लोक ९५ पत्र २१८ में लिखा है "जिन सूत्र सो तत्व ज्ञानिन करि आराधिवे योग्य है। जिन शासन अनादि निधन कहिए आदि अर अन्त नाहीं और सूक्ष्म कहिए अति सूक्ष्म है चरचा जा विषे और तत्व स्वरूप का प्रकाशक है और पुरुषार्थ कहिए मोक्ष ताके उपदेश तें जीवन का हितु है जित कहिए अति प्रबल है। और

अगन्थ कहिए काहू करि जोत्या न जाय । अमित कहिए अपार है जाका पार प्रभु ही पावै । इस जिनवाणी के कई अधिकारों की यानी धवल, जयधवल, महाधवलादि की रचना जेष्ट सुदी ५ के दिन की गई है यह दिन श्रुत पंचमी नाम से विख्यात है। इन ग्रन्थों के दर्शन मूडविद्री में होते हैं । आज कल इनके पाठ करने की योग्यता किसी में नहीं है । और इन ग्रंथों को भूतवलि और पुष्पदंत मुनियों ने धरसेन मुनि जो गिरिनार के शिखर चंद्रगुफा के वासी के उपदेश से रचे जेष्ट सुदी ५ के दिन रच कर प्रतिष्ठा की । ऐसे महान ग्रंथों की यह श्री नेमचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती स्वाध्याय कर रहे थे उस वक्त मंत्री चामुंडराय के आने पर उन महान ग्रंथों को बंद कर दिया और श्री गोमट्टसार इत्यादि ग्रंथ रचे । इन के दर्शन से जीव ज्ञान को प्राप्त करेगा और प्राचीन रत्न मई प्रतिमाओं के दर्शन हैं मानों तीन लोक की विभूत वहीं पर इकट्ठी है। इस लिए हर एक को वहाँ जाकर दर्शन करना चाहिए। यात्रा पुस्तक हमारे यहां से कुछ नियमों पर विना मूल्य मिलती हैं ।

उस दिन शास्त्रों को बाहर मेज के उपर विराजमान कर धूप पूजादि करनी चाहिए । हम प्रगट किए विना नहीं रह सकते कि शहर हाथरस में जिनवाणी की सजावट और पूजा श्रुत पंचमी को एक महान आदर्श रूप में होती है जिस के लिए जैन समाज तथा ला० मिश्रीलालजी सोगानी मंत्री सरस्वती भंडारको कोटिः धन्यवाद हैं:—जो जीव उस दिन व्रत करते हैं महापुण्य उपार्जन करते हैं । परंपराय स्वाध्याय के प्रसाद से मोक्ष के पात्र बनते हैं ॥ जिनवाणी की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है ।

जिनवाणी रक्षा ।

—श्रीयुत अमोलकचंद जी मंत्री सरस्वती भंडार विभाग श्रीमती दिगम्बर जैन मालवा प्रांतिक सभा ने इस विषय में जो

लेख विवरण १२—१३ वर्ष में दीया है उसका संक्षेप यहां प्रगट करता हूं—मंत्री जी लिखते हैं।

"आज मुझे बड़ा हर्ष है मेरे हृदय में आनंद की लहरें उठ रही हैं मेरा भाग्योदय है कि सरस्वती सेवा का कार्य प्राप्त हुआ है। जीव अनादि से भ्रमण कर रहा है और चतुर्गति रूप संसार में जन्म मरण के दुःख उठा रहा है। इस को शीतलता देने वाली एक जिनवाणी सरस्वती ही है। हिताहित मार्ग दिखा कर स्व, पर, भेद विज्ञान, पैदा करती है। वस्तु स्वरूप को यथार्थ कहती है जैन धर्म का मूल जिनवाणी है। इस की रक्षा में जैन धर्म की रक्षा है जिनवाणी की उन्नति से जैन धर्म की उन्नति है। यदि आज यह जिनवाणी न होती तो कोई नहीं जान सक्ता था कि जैन धर्म क्या है संसार और मोक्ष क्या है? आचार्यों ने कठिन परिश्रम से जिनवाणी के ग्रंथ निर्माण कीये और उन्हीं के हमको दर्शन और उपदेश आज मिल रहा है लेकिन दुःख की बात है कि इस में से भी हमारी अज्ञानता और आपसी फूट के कारण अनेक स्थानों के सरस्वती भंडारों के बहु मूल्य ग्रंथ जीर्ण शीर्ण होकर चूहों दीमकों के ग्रास बन कर नष्ट हो रहे हैं। कितने ही दूसरी भाषाओं में होने से हम से छूट रहे हैं। क्या यह सुनकर आप को दुःख न होगा? अवश्य होगा। भाइयो! जरा ध्यान दो, यदि जैन धर्म की रक्षा और उन्नति के मूल ये ग्रंथ ही न रहेंगे। तब यह आप का धर्म कहां सुनाई पड़ेगा? कहां आप की आम्नाय और कहां आपका पंथ रहेगा। इस लिए यदि आप सच्चे धर्मोन्नति के इच्छुक हैं तो जहां जहां ग्रंथ आलमारियों में बंद रहकर जीर्ण शीर्ण हो रहे हैं, उन ग्रंथों को निकलवाइए, बाहर धूप दिलाइए, यदि जीर्ण होगए हों तो उनकी प्रति दूसरी कराइए। कर्नाटकी आदि दूसरी भाषाओं में हों तो हिंदी लिपि कराइए। इत्यादि बातों का प्रबंध करना आपका हमारा पूर्ण कर्तव्य है"; समाप्त।

प्रिय सज्जनो! मंत्री जी के बहु मूल्य वाक्यों को सुन कर आप बहुत प्रसन्न हुए होंगे। श्रीमान दानवीर राय बहादुर सर नाईट सेठ हुकमचंद जी सभापति तथा श्री० ला० भगवतदास

श्री जैन जाति भूषण महामंत्री श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रांतिक सभा बड़नगर (मालवा) राजपूताना को कोटिशः धन्यवाद है कि सभा और औषधालय द्वारा भारत वर्ष में अत्युत्य लाभ पहुंचा रहे हैं।

आशा है कि जहां तहां ऐसे ग्रन्थों को देखा को वहां के सज्जन व पंच खुद रक्षा करेंगे। मालवा की सभा के निवेदन पर भी सदैव अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

जिनवाणी की रक्षा और स्वाध्याय करना कराना हम जैनियों का परम कर्तव्य होना चाहिए। इन कार्यों में मन वचन काय और धन लगाना महा पुण्य और यश का कारण है इन कार्यों में धन लगाना मानो साथ में लेजाना है। कोठरियों में, आलय में, संदूकों में जिनवाणी की रक्षा ठीक २ नहीं होती है इस लिए हमको बड़े सज धज से बड़ी २ आलमारियों में विराजमान रखना चाहिए जहां हवा लगती रहे और दर्शकों को दर्शन मिलते रहें तथा पूजादि भी होती रहे। जीर्ण शीर्ण कर सदा के लिए जलांजलि न दीजिए। हृदय फटा जाता है इस महा अविनय को कृपया रोक कर प्रबंध कीजिए ज्ञान के विनय से केवल ज्ञान का बंध है। ऐसे अलमारीयों की चाबी एक स्यानोश अप्रमादी विनय वान भाई के पास रहना चाहिए ताकि वह सरस्वती का सर्व कार्य करे और स्वाध्याय करने वालों का नम्बर बढ़ावे। सूची रजिस्टर वगैरहः सब रखने चाहिए शास्त्रजी हमारे गुरुओं की जगह पर हैं। क्यों कि गुरुओं के दर्शन कठिन हो गए हैं।
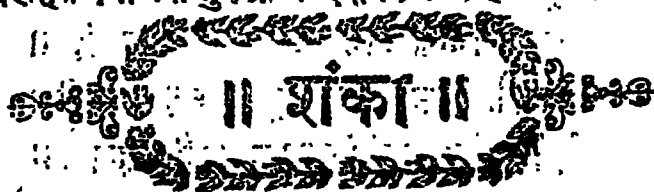
॥ शंका ॥

यदि कोई शंका करे क्या जैनी निगुरे हैं? इस का समाधान इस प्रकार है—निगुरा उसको कहते हैं जो गुरु को नहीं मानता हो। जैनी लोगों के गुरुओं का स्वरूप पहले वर्णन कर चुके हैं जिन के गुण सर्वोत्कृष्ट होते हैं और उनका अभाव नहीं।

श्रीगुरु के प्रसाद कर अनन्तानंत जीव अनन्त सुख में प्राप्त हो गए और होवेंगे। काल दोष से यदि वे दृष्टि न पड़ें तो अन्य उनकी जगह नहीं माने जा सकते हैं जैसे हंसों के न दीखते हुए अन्य पक्षी को हंस की पदवी नहीं हो सकती है। इस का आप खुद न्याय कर सकते हैं। जिस जीव में सिंह के गुण होंगे वही "सिंह" कहा जा सकता है। केवल "सिंह" नाम रखने से सिंह नहीं हो सकता है। देव गुरु शास्त्र का अविनय करना अनन्त दुख का कारण है और ऐसे दोष देखि एक दूसरे को न समोधे तो प्रमाद का दोष लगता है तातें कल्याण निमित्त धर्मोपदेश देना आवश्यकीय है। इस जीवन को केवल धर्म ही सहाय है धर्म न उपार्ज्या होय और बहुत काल तक जीने और सुख की इच्छा करे, तो कैसे बने। कर्मों की विचित्र गति है। क्षण में जीव पर्वत पर क्षण में खांड़े में क्षण में एक रस से दूसरे रस में, कभी विरस इत्यादि में आता है। देखिए हमारी अवस्था कैसी हो रही है, पं० भूदरदास जी कहते हैं:—

जोई छिन कटै सोई आयु में अवश्य घटै।
बूंद २ वीतै जैसे अंजुली को जल है॥
देह नित छीन होय नैन तेज हीन होय।
जोवन मलीन होय छीन होत बल है॥
ढूकै जरा नेरी तकै अन्तक अहेरी आवे।
परभौ नजीक जाय नरभौ निफल है॥
मिलकै मिलापी जन पूंछत कुशल मेरी।
ऐसी यों दशा में मित्र! काहे की कुशल है॥

यह परिग्रह विनासीक महा दुख का कारण है। देह अपवित्र है। ज्ञान रहित अविवेकी इस तन से अति राग करता है। यह शरीर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र से शुद्ध होता है और मनुष्य देवादि द्वारा पूज्य होता है। जीव भोगों से तृप्त नहीं होते। ज्यों २ भोग करता है त्यों २ लालसा बढ़ती है जैसे

अग्नि में ज्यों २ लकडी डालोगे त्यों २ ज्वाला बढेगी। यह जीवरूपी राजा कुबुद्धि रूपी स्त्री सहित रमै है अर मृत्यू याकूं अचानक ग्रस्या चाहे है। मनरूपी हस्ती, रूप वन विषै क्रीडा करै है। ज्ञानरूप अंकुश तें याहि वस कर, वैराग्यरूपी गज थंभ सूँ विवेकी बांधै हैं। चित्त के मेरे चंचलता धरे हैं। तातैं चित्त कूँ वासि करना योग्य है। चित्त कू वासि करना

स्वाध्याय से होता है?

विचारनीय बात है कि मनुष्य पर्याय अति दुर्लभ है इसी से आत्म कल्याण होसकता है आज हमारे पास सब प्रकार की सामग्री मौजूद है धर्म अच्छी तरह साधना चाहिये वरना एक दिन ऐसा होगा कि न हमारे पास वह सामग्री रहेगी और सब कुटुम्बी व मित्रजन न्यारे २ होजावेंगे। इससे संसार से विरक्त हो धर्म साधन करना चाहिये। यह मनुष्य पर्याय रूपी रत्न को संसार रूपी समुद्र में मत फेंको। हमको स्वाध्याय करना चाहिये। श्री आदि पुराणजी में लिखा है।

(श्लोक १९८ से २०० तक पर्व १९)

ए बाह्यभांतर बारह प्रकार के तप तिन विषे स्वाध्याय समान तप न पूर्व भया न अब है न आगे होयगा। स्वाध्याय विषै राति निश्चल संजमी जिनेन्द्री होय है। स्वाध्याय करि बुद्धिमान विनय करि मंडित समाधान रूप होय है।

न स्वाध्यायात्परं तपः।

अर्थात स्वाध्याय के समान कोई तप नहीं है। जबतक स्वाध्याय होती रहती है पुण्य का संचय और पाप का क्षय होता रहता है। अक्सर देखा जाता है कि हमारे बहुत से

भाई कुछ थोड़ासा जानकर स्वाध्याय छोड देते हैं और कहते हैं जो कुछ जानना था जान लिया अब स्वाध्याय की जरूरत नहीं। हम पंडित भूदरदासजी की निम्न लिखित चौपाई का स्मर्ण उन्हें दिलाते हैं:—

जानन जोग लियौ हम जान। तहां हमारे दिढ़ सरधान ॥
यही सही समकित कौ अङ्ग। काहे करें और श्रुत सङ्ग ॥
जो तुम नीकें लीनों जान। तामें भी है बहुत विनान ॥
तातैं सदा उद्यमी रहो। ज्ञान गुमान भूलि जिन गहो ॥

प्रिय पाठको! यदि आप नित्य दिन रात्रि यानी २४ घंटे के अन्दर आधा पत्र भी पढलेंगे तो सालभर में २०० पत्र यानी एक छोटे ग्रंथ की स्वाध्याय हो सक्ती है जैसे एक २ बूंद कर तालाव भरजाता है। स्वाध्याय से अचिंत्य लाभ है नुकसान किसी प्रकार का नहीं है। हम आपके खाने पीने में कोई बाधा नहीं डालते हैं।

भगवत प्रार्थना।

आगम अभ्यास होहू सेवा सर्वज्ञ तेरी।
सङ्गति सदीव मिलौ साधरमी जनकी ॥
सन्तन के गुन को वखान यह बान परो।
मैटो टेव देव ! पर औगुन कथन की ॥
सबही सों ऐन सुख दैन मुख बैन भाखों।
भावना त्रिकाल राखों आतमीक धनकी ॥
जौलों कर्म काट खोलों मोक्षके कपाट तौलौं।
ये ही बात हूजौ प्रभु पूजौ आस मनकी ॥

शरीर में क्षुधा भोगादि रोग हैं। एक दफे तृप्त होने से शान्ति नहीं होती है। परन्तु मनुष्य पर्याय उच्च कु ˜, श्रावक कुल, साधर्मियों की सत सङ्गत मुश्किल है। जिनवाणी सात नय से वर्णन होती है। जैसे दूध विलोने वाली एक हाथकी रस्सी ढीली करती है मगर छोडती नहीं फिर दूसरे हाथ की रस्सी ढीली करती है इस प्रकार की क्रिया से मक्खन निकाल लेती है। उसी प्रकार स्याद्वादी सम्यग्दर्शन से तत्वस्वरूप को अपनी ओर खींचता है, सम्यग्ज्ञान से पदार्थ के भाव को ग्रहण करता है और दर्शनज्ञानकी आचारण क्रियासे, सम्यगचारित्र से परमात्म पद के प्राप्ति की सिद्धि करता है। भावार्थ जिस नय के कथन का प्रयोजन द्रव्य से हो उसे द्रव्यार्थिक और जिसका प्रयोजन पर्याय से ही हो उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं इन दोनों नयों से ही उस वस्तु के यथार्थ स्वरूप का साधन होता है।

नय वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञानको कहते हैं मुख्य नय, दो प्रकार के हैं। निश्चय और व्यवहार। अथवा उपनय वस्तु के असली अंश को ग्रहण करना उसे निश्चय नय कहते हैं। जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना। किसी निमित के वश से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ रूप जानने वाले ज्ञान को व्यवहार नय कहते हैं। जैसे मिट्टीके घड़े में घी के रहने से घी का घडा कहना। निश्चय नय के दो भेद द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक। जो द्रव्य अर्थात सामान्य को ग्रहण करे उसे द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। जो विशेष को (गुण अथवा पर्याय को) विषय करे उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं। द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद—नैगम, संग्रह, व्यवहार। पर्यायार्थिक नय के चार भेद—ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, और एवंभूत। विशेष हाल जैन

शास्त्रों से जानना। एक नय से ग्रहण करने से वहां मिथ्यात्व का प्रसंग होता है। जिनवाणी स्याद्वाद वाणी सप्त नय कर वर्णन होती है। हम जानते हैं कि हमारा शरीर जिसको नाना प्रकार पोषा अन्त में काम न देगा और अन्त में यह हमको छोड़ेगा। तो इससे आत्म कार्य लेना चाहिये। अगर हम आत्म कल्याण न करें तो हम आत्मघाती हैं। आत्म कल्याण करने को नाना प्रकार से उपदेश शास्त्र में दिया है और सैकड़ों हजारों ग्रंथ रचे हैं।

उपदेश नाना प्रकार का जीवों की अवस्था माफिक होता है। एक उपदेश सर्वथा सब जीवों को नहीं हो सकता है। जैसे माता छोटे बालक को खेलने का उपदेश देती है और ज्यों २ बड़ा होता है त्यों २ नाना प्रकारके उपदेश जैसे पढ़ना रोजगार मन्दिरजी में जाना ज्ञान गृहण करना होता है। अन्त में श्री गुरु उपदेश करते हैं कि सन्सार से विरक्त हो। यदि बड़ी अवस्था का उपदेश छोटे बालक को या छोटे बालक का उपदेश बड़े को दिया जावे तो दोनों का जीवन बिगड़ हो जावै इसी तरह जैन धर्म के शास्त्रजी चार अनुयोगों में विभक्त हैं यानी प्रथमानुयोग (६३ शालाका पुरुष कथन) करुणानु-योग (तीन लोक कथन) चरणानुयोग (चारित्र कथन) और द्रव्यानुयोग (तत्व कथन) शुरू २ में प्रथमानुयोग जैसे पद्म-पुराणजी (जैन रामायण) प्रद्युमन चरित्र (सुपुत्र राजा श्री कृष्णजी के) हरिवंश पुराण (राजा श्रीकृष्णजी का वृतान्त) श्रीपाल चरित्र इत्यादि ग्रन्थों के जिनमें त्रेशठ शलाका पुरुषों के चारित्र की स्वाध्याय करनी चाहिये। और फिर दूसरे ग्रन्थों की। हम लोगों को सर्वथा एक नय से काम नहीं लेना

चाहिये क्योंकि एक वस्तु में अनेक धर्म होते हैं जैसे एक पुरुष अनेक संबंधसे, किसी का पिता, पुत्र, भ्राता, मामा, भानजा बहनोई शाला, बाबा, नाती, पन्ती, इत्यादि होता है इसी तरह करुणा और धर्मोन्नति के विचार से ज्ञानावर्णी कर्म का आश्रव नहीं हो सक्ता। एक नय से सर्वथा कार्य नहीं करना चाहिये।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव को समझकर हम लोगों को धर्म साधन व धर्मोन्नति करना चाहिये। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में लिखा है कि चारों संध्याओं की अन्तिम दो २ घड़ियों में दिग्दाह, उल्कापात, वज्रपात, इन्द्रधनुष, सूर्य चन्द्र ग्रहण, तूफान, भूकम्प, आदि उत्पातों के समय में सिद्धान्त ग्रन्थों का पठन वर्जित है। हां स्तोत्र, आराधना, धर्म कथादिक के गून्थ बांच सक्ते हैं। शुद्ध जल से हस्तपादादि प्रक्षालन कर शुद्ध स्थान में पर्यंकासन बैठकर नमस्कार पूर्वक शास्त्राध्ययन करना विनयाचार कहा जाता है। हमको उपगार करना जरूर चाहिये जैसा जीव हो जैसी उसकी प्रकृति हो सब वातों को समझ सोचकर करुणा और धर्मबुद्धि के साथ उसके आगामी का जैसा भला होता मालुम होवे वैसा करना चाहिये। (मगर साथ में अपने बिगार सुधार का मुख्य ख्याल रखना आवश्यक है) देखिये व्यवहार में भी कहते हैं "कि सबको एक लकड़ी से मत हांको" जब लौकिक में भी एक नय नहीं है तो धर्म में एक नय कदापि नहीं हो सकी है! हमारा और दूसरों का भला होय सो करना विषय कषायों को दूर रखना योग्य है। सन्सार में नाना प्रकार के जीव हैं जबतक दस बीस गून्थों का पठन पाठन खूब न करेंगे तबतक उन्नति का विचार स्वमेव ठीक २ नहीं होने की सम्भावना हो सकती है। इसलिये जितना पढ़ेंगे छानेंगे उतना रहस्य बढ़ेगा पस स्वाध्याय जीवन पर्यंत तक करना चाहिये।

पाठको! श्रीमान पंडत प्यारेलालजी अलीगढ़ निवासी महासभा स्वाध्याय प्रचार विभाग के मंत्री लिखते हैं "कुसङ्गति

के कारण मनुष्य जन्म व्यर्थ व्यतीत हो रहा है" "गया वक्त हाथ आता नहीं" आत्मा के हित करने के लिये जिनवाणी ग्रहण करने को कुछ प्रतिज्ञा (यम = यावज्जीवन, नेम = कुछ काल पर्यंत) करो- सदैव ज्ञानोपयोग रहने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

प्रमादी रहने से बड़ी हानि होती है प्रमाद से छः प्रकृतियों का अर्थात अस्थिर, अशुभ, आसाता वेदनीय, अयशः कीर्ति, अरति और शोक का बंध होता है पस प्रमाद और कुसंगति तत्काल दूर कर विनयी हो धर्म धारण करना योग्य है बालकों स्त्रीयों को विद्या अभ्यास करना जरूरी है। (समाप्त) श्री जिनसेनाचार्य ने श्री पद्मपुराण में कहा है कि जो कुछ नेम या यम जीव प्राप्त कर लेता है वही उसका सच्चा रत्न है। स्वाध्याय के प्रसाद से असंख्य जीव कुगति से बच गये हैं यह बात शास्त्रों से भली भांति जानी जा सक्ती है:—

नेम या यम करने से जीव स्वाध्याय से नहीं छूटता है क्यों कि नेम या यम भङ्ग करने का बड़ा पाप है इस पाप को चांडालादि ने भी बहुत बुरा समझा है इस लिए कोई भी यम व नेम करते समय सब बातों का विचार करले और "सूतक पातक हारी बीमारी सफर इत्यादि (स्त्रियों को इसके अतिरिक्त स्त्रीधर्म जापा वगैरहः) में छूट रखलेना उचित है। विपति व कठिनसमय में सावधान रहना यही पुरुषार्थ है और जांच का भी वही समय है !

सत्य जानिए मेरा लेख ऐसे है जैसे बालक चंद्रमा को पकड़ना चाहे परंतु मैं भक्ति वस जिनवाणी की स्तुति व गुणानुवाद करूं हूं।

हम को नेत्रों से दर्शन, मुख से जिनेंद्र गुणानुवाद स्वाध्याय करना, कानों से धर्मध्वनि सुनना हाथों से धर्म कार्य दान करना, मन से धर्म भावना करना चाहिए। मेरे अंतरङ्ग यह मङ्गलीक भावना दृढ़ रहे और जीवमात्र दुख से छूटें और सुख प्राप्त करें।

महिमा जिनवर वचन की, नहीं वचन वल होय ।
भुजवल सों सागर अगम, तिरे न तीरहिं कोय ॥
इस असार संसार में, और न सरन उपाय ।
जन्म जन्म हूजो हमें जिनवर धर्म सहाय ॥

॥ भजन ॥

(१)

करो कल्याण आतम का भरोसा है नहीं दम का ।
ए काया कांच की शीशी, फूल मत देख कर इसको,
छिनक में फूट जावेगी वबूला जैसे शबनम का ॥करो०॥
ए धन दौलत मकां मँदिर जो तू अपने बताता है,
नहीं हरगिज कभी तेरे छोड़, जँजाल सब गम का ॥ करो० ॥
सुजन सुत नार पितु मादर सभी परिवार अरु बिरादर,
खड़े सब देखते रहेंगे कूंच होगा जभी दमका ॥ करो० ॥
बड़ी अटवी ए जग रूपी फँसे मत जान कर इन में,
कहैं चुन्नी समझ मन में सितारा ग्यान का चमका ॥करो०॥

* सम्पूर्ण *

(२)

पद ॥ परदा पड़ा है मोह का आता नजर नहीं ।
चेतन तेरा सरूप है तुझ को खबर नहीं ॥ १ ॥ परदा०
चारों गतिमें मारा फिरे ख्वार रातदिन, आपमेंआप आपको लखता मगर नहीं ॥ २ ॥ परदा पड़ा है मोह का०
तज मन विकार, धारले अनुभव, सुचेत हो। निज पर विचार, देख जगत तेरा घर नहीं ॥ परदा पड़ा० ॥
तू भव स्वरूप शिव स्वरूप ब्रह्मरूप है। विषियों के

सङ्ग में होती कदर नहीं। परदा पड़ा है मोह का० ॥ चाहे तो कर्म काट, तू परमात्मा बने, अफसोस है कि इस पर भी करता नजर नहीं ॥ परदा पडा है मोह का०॥ निज सक्ति को पहिचान समझ तू न्यामत। आलस में पडे रहने से होता गुजर नहीं॥ परदा पडा है मोह का० ॥

जिन सेवकः—

॥ संयम ॥
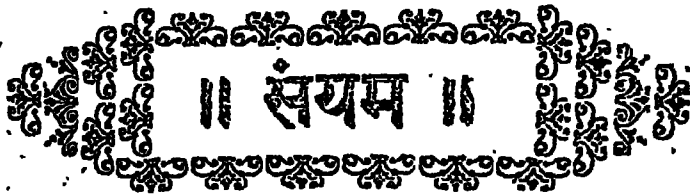
पाँचों इन्द्रीयों और छटे मन का दमन करना, वैराग्य भावना, वारह भावनाओं का चिंतवन करना, सँसारी कार्यों में विरक्तता उपजावना सो संयम है।

बारह भावना (भैयालाल कृत)

* चौपाई *

पञ्च परम गुरु वँदन करूं। मन वच भाव सहित उर धरूं ॥
बारह भावन पावन जान। भाऊं आत्म गुण पहिचान ॥१ ॥
थिर नहीं दीखे नयनों वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त ॥
थिर विन नेह कौन से करूं। अथिर देख ममता परि हरूं ॥२ ॥
अशरण तोहि शरण नहीं कोय। तीन लोक में दृग धर जोय ॥
कोई न तेरा राखन हार। कर्मन वस चेतन निरधार ॥३ ॥
अरु सँसार भावना येह। पर द्रव्यन सों कैसो नेह ॥
तू चेतन, वे जड़ सर्वङ्ग। ताते तजो परायो सङ्ग ॥४ ॥
जीव अकेला फिरे त्रिकाल। ऊरध मध्य भवन पाताल ॥
दूजा कोई न तेरे साथ। सदा अकेला भ्रमे अनाथ ॥५ ॥
भिन्न सदा पुद्गल से रहे। भर्म बुद्धि से जड़ता गहे ॥
वे रूपी पुद्गल के खंद। तू चिनमूरति सदा अबंध ॥६ ॥
अशुचि देख देहादिक अङ्ग। कौन कुवस्तु लगी तो सङ्ग ॥
अस्थि चाम रुधिरादिक गेह। मल मूत्रनि लख तजो स्नेह ॥७ ॥
आश्रव पर से कीजे प्रीति। ताते बंध पड़े विपरीत ॥
पुद्गल तोहि अपन यो नाहिं। तू चेतन, ये जड़ सब आहि ॥८ ॥

सम्वर पर को रोकन भाव । सुख होवे को यही उपाय ॥
आवें नहीं नए जहाँ कर्म । पिछले रुक प्रगटे निज धर्म ॥९॥
थिति पूर्ण ह्वै खिरखिर जाय । निर्जर भाव अधिक अधिकाय ॥
निर्मल होय चिदानन्द आप । मिटे सहज पर सङ्ग मिलाप ॥१०॥
लोक माँहिं तेरो कुछ नाहिं । लोक अन्य तू अन्य लखाहिं ॥
यह सब षट द्रव्यन को धाम ॥ तू चिन्मूरति आतमराम ॥११॥
दुर्लभ पर को रोकन भाव । सो तो दुर्लभ है सुन राव ॥
जो तेरे हैं ज्ञान अनंत ॥ सो नहीं दुर्लभ सुनो महंत ॥१२॥
धर्म स्वभाव आप ही जान । आप स्वभाव धर्म सोई मान ॥
जब वह धर्म प्रगट तोहे होइ । तब परमातम पद लख सोइ ॥१३॥
येही बारह भावन सार । तीर्थंकर भावें निर्धार ॥
होय विराग महाव्रत लेय । तब भव भ्रमण जलांजलि देय ॥१४॥
भैया भावो भाव अनूप । भावत होय तुरत शिव भूप ॥
सुख अनंत विलसो निशि दीश । इम भापो स्वामी जगदीश॥१५॥

* दोहा *

प्रथम अथिर अशरण जगत, एक अन्य अशुचान ॥
आश्रव सम्वर निर्जरा, लोक वोध दुलभान ॥ १६ ॥

॥ तप ॥

निश्चय से देखिए तो सर्व गति में दुख है । तपनि के भेद बहुत हैं सो शास्त्रजी से मालुम करना । तप दो प्रकार के होते हैं एक अंतरङ्ग दूसरा बहिरङ्ग । सर्व देश मुनि के और एक देश श्रावक के होते हैं । कुछ संक्षेप से मुनि के तपनि का वर्णन श्री गुरु के स्वरूप में आया है । तप और नेम में कुछ भेद नहीं है । जैसे किसान खेत को बाड से, होजवान डाट से होज़ के पानी की, रक्षा करता है । इसी तरह मुनि श्रावक अपने धर्म की यम नेम रूपी बाढ़ डाट लगाकर, रक्षा करते हैं और तप कर कर्मों की निर्जरा करते हैं यही उनका रत्न है । लोकिक कार्य भी नियम से होते देखिए तो धर्म कार्य को अवश्य यम नेम चाहिए ।

जितने दम व नेम कीये जावें सो सब तप के भेद हैं। श्रावकों को १७ नियम नित्य करने चाहिए—१ भोजन २ षटरस (दूध दही तेल घी मीठा नोन) ३ पान (पीने)की वस्तु ४ कुंकुमादि विलेपन सुगंध तेल लेपादि ५ पुष्प—फूल ६ तांबुल—पान सुपारी आदि ७ गीत—संसारी गान नाटकादि ८ नृत्य—संसारी नृत्य ९ ब्रह्मचर्य—काम सेवन १० स्नान ११ वस्त्र १२ भूषण १३ वाहन हाथी घोड़ा बैल आदि १४ शयन—शय्यादि १५ आसन चौकी कुरसी फर्स आदि १६ सचित (हरी का प्रमाण) १७ अन्य वस्तु (दिशाओं का भ्रमण)—यह बारहवां नियम ग्यारहवां स्थूल भोगोपभोग परिमाणव्रत रूचो प्रतिमा वाले श्रावकों को करना चाहिए। इस जै नियों को ऐसे हर समय भाव रखने योग्य है।

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विद धातु देव॥

O Lord? make myself such that I may have love for all beings, pleasure at the sight of learned men unstinted sympathy for those in trouble, and tolerance towards those who are perversely inclined.

नोट—मधस्थ भावना उस भाव को कहते हैं जैसे एक अनजान पुरुष हो तिस से न तो मित्रता है न शत्रुता है—

स्वाध्याय करना सो अंतरंग तप है। चिदानंद चैतन्य के गुण अनंत उर धारि—क्रोधादि को इस प्रकार जीत दश धर्म उपार्जन करै।

क्रोध	का	अभाव	क्षमा	से	
मान	„	„	मार्दव *	„	*मान कषाय रहित
माया	„	„	आर्जव +	„	+कपट छल रहित
असत्य	„	„	सत्य	„	

लोभ का अभाव शौच* „ *पवित्रता उज्जलता
कषायन „ } „ „
५ व्रत अहिंसादि } संजम + + एक देश सकल देश
इच्छा „ „ तप „
पर में ममता „ „ त्याग „
परिग्रह त्याग }
गृहस्थ की भावना } „ „ आकिंचन „
वेदन (स्त्रीपुरुष नपुंसक, }
का अभाव यानी आत्म } „ „ ब्रह्मचर्य „
स्वरूप में प्रवृति }

दान

दान चार प्रकार के हैं यथा आहार औषधि, शास्त्र और अभय। (उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य से कई भेद हैं)

यह नियम द्रव्य द्वारा या सामग्री से पाला जा सकता है। हमारे आचार्यों ने शास्त्र जी में हम को हमारी मासिक आमद में से चौथाई हिस्सा दान करने का उपदेश दिया है जो कोई ऐसा करे वह तो उत्कृष्ट पुरुष है बहुत से बड़े २ धर्मात्मा अपनी आमद में से आधा या ज्यादा धर्म में लगा देते हैं उनके पुण्य को केवली भगवान ही जानते हैं। जब ऐसे भाव या निमित्त न हो तो भी शक्ति को न छिपा कर महावारी मुकर्रर करे या रुपये पीछे कुछ बांधकर दान द्रव्य एकत्र करना चाहिए। और जहां जहां उचित स्थानों में जरूरत हो लगाता रहे। इस तरह पर हम एक समय में बड़ी तादाद भी लगा सकेंगे और हमको कोई कठिनता मालुम न होगी। पारमार्थिक लाभ के अतिरिक्त लौकिक लाभ जैसे दानवीर, सेठ साहूकार धर्मात्मा कुल भूषणादि पद भी लग जाते हैं जिसका लौकिक जीवन वास्तव में सुधरा उसका

पारमार्थिक भी जरूर सुधरैगा उन्हीं का जन्म और द्रव्य सफल है। परभव में द्रव्य लेजाने का एक यह 'दान' सुगम उपाय है। हमको न्याय पूर्वक द्रव्य कमाना और खर्च करना चाहिए। लक्ष्मी रूपी द्रव्य में तीव्रराग होने से तिर्यंच गति का बंध पड़ना संभव है। आपने उदाहरण भी बहुत से सुने होंगे कि "फलाने के पास बहुत द्रव्य था मरकर सर्प हुआ"। यदि आप द्रव्य ही साथ में रखना चाहते हैं तो धर्म में लगाइए। निदान नहीं करना यानी मेरा फलाना कार्य सिद्ध हो तो यह करूं ऐसी कल्पना नहीं करनी।

हर शहर में भाइयों को अभयदान का निमित बनाना चाहिए।

यदपि साधारण तौर पर उपर्युक्त चार दान हैं परंतु श्री आदि पुराणजी पर्व ३७ में और रूप में चार दान इस प्रकार कहे हैं सोई कोई विरोध न करना करुणादान, सीताजी के किमिच्छादान का कथन समाधि मरण पाठ से भली भांति जाना जा सक्ता है।

दयादान, पात्रदान, समदान, अन्वयदान।

दयादान—दया सहित जीवनि के समूह विषे अनुग्रह करना, मन वचन काय की शुद्धता करि सकल का उपकार करना, काहू कू भय न उपजावना, दुषित भूषित जीवनि कू पोषना इसे दयादत्ति भी कहते हैं। (करुणा दान भी यही है)

पात्रदान—महा तपोधन महामुनि की अरचा करनी, पडगाहनादि नवधाभक्ति करि तिनि कू आहारादिक देने। अर्जिका

तथा उत्कृष्ट श्रावक दशमी ग्यारमी प्रतिमा का धारक तिन कू विनय भक्ति करि अन्न धन देने सो पात्रदत्ति है। (पद्मपुराण में भी यही कहा है)

समदान—क्रीड़ा मैत्रव्रतादि करि जे आप समान अणुव्रती संसार सागर के तारक श्रावक तिनि कू आहारदान, औषधदान, शास्त्रदान, अभैदान तथा भूमिदान, सुवर्णदान, रत्नादिक देना सो समदान—यह समदान मध्यम पात्र जो व्रती श्रावक तिन कू श्रद्धा पूर्वक विनय से देना ।

अन्वयदान-अपने वंश की रक्षा के अर्थि धर्मात्मा विवेकी जो पुत्र ताकू घर का सकल द्रव्य देना और धर्म का उपदेश देना। अर सकल कुटम्ब का बोझ देना अर आप सकल सू निर्वर्ति होय मुनिव्रत लेने अथवा उत्कृष्ट श्रावक के व्रत धारने। (सर्वदान भी यही है)

नोट १—मुनियों के वास्ते शहर के बाहर जङ्गलों में मठ मण्डप यानी वस्तिका बनवा देना सो वस्तिका दान चौथे शिक्षाव्रत में कहा है।

नोट २—जब कहीं गुफा, वसतिका इत्यादि में मुनि ठहरें हैं तब वे इस प्रकार कहते हैं "भो स्थान के निवासी हो, तुम्हारी इच्छा करि कै यहां हम तिष्ठें हैं"। जाते समय इस प्रकार कहे हैं—"भो स्थान के स्वामी हो, हम तुम्हारे स्थान में इतने काल तिष्ठे अब गमन करें हैं"।

नोट ३—जैन बाल गुटका दूसरे भाग में दान के चार भेद करुणादान, पात्रदान, समदान, और सर्वदानभौर लिखे हैं। जिसका तात्पर्य ऊपर के चार दान से है सोई पाठकगण कोई शंका न करें।

स्त्री समाज से प्रार्थना

प्रिय माताओं व बहिनों ?

मैं अपने इष्टदेव का स्मरण कर आपके सनमुख कुछ लेख द्वारा प्रकाश करती हूं कि यद्यपि हर स्थान पर स्त्रियां धर्म साधन करती हैं तथापि जैसा करना उचित है वैसा कम नजर आता है इसलिये मेरा विचार यह है कि आप बहिनों की सेवा करूं। मुझमें ज्यादा ज्ञान नहीं है परन्तु जिन शासन भक्ति वस कार्य करने को उद्यमी हुई हूं। सन्सार में उपकार और अपकार दो ही हैं। उपकार नाम भलाई और अपकार नाम बुराई। देखने में अक्षरों का थोडासा ही अन्तर है। जो अपना और दूसरों का भला करते हैं उन्हीं का जीवन सफल है। इस मनुष्य पर्यायको देवभी तरसते हैं।

जैन समाज के आचार सुधार का एक स्त्री समाज ही निमित्त है जैसे गाडी दो पहियों के विना नहीं चल सक्ती है।

हम आठें चौदसको सूत्रजी भक्तामरजी सुना करती हैं यह दृढ़ता जगत प्रसिद्ध है। मगर हम बहुतसी बहिनें यहभी नहीं जानती हैं कि इनमें क्या लिखा है और यदि नियम से शास्त्र स्वाध्याय करें तथा सुनें तो हमारे आचार विचार श्रेष्ठ होसक्ते हैं। शीलवन्ती सीता अंजनाकी सी पदवी धारण हम कर सक्ती हैं। वे भी स्त्रियां हम सरीखी थीं। मगर शास्त्रज्ञान था इस सबब से धर्म में हर प्रकार से दृढ़ थीं और यही कारण है कि वे मोक्ष प्राप्त करेंगी और सन्सारमें उनका नाम विख्यात है।

इसालिये हमको धर्म साधन करना हमारा परम कर्तव्य है ।

इस पुस्तक में हर पुरुष व स्त्री को जो नित्य षट कर्म करने चाहिये उसका कुछ संक्षेप से हाल लिखा है । आशा है कि एक चित्त हो पढें व श्रवण करें ।

"स्वाध्याय" समान कोई तप और कल्याणकारी वस्तु नहीं है । सदा उसमें लीन रहना योग्य है ।

किसी से वाद विवाद नहीं करना । इस्से गुण नहीं बढ़ता है । शांति पूर्वक धर्म साधन करो निमित्त पाकर उपदेश व समाधान मिष्ट बचनों से करना श्रेष्ट है ।

माला तो करमें फिरे, जीभ फिरे मुख मांय ।
मनवा फिरे बजारमें, वो तो सुमरन नाय ॥ १ ॥
माला चेतनसों कहै, कहा फिरावै मोय ।
मनुवा क्यों नाहिं फेरता, मुक्त मिलावैं तोय ॥ २ ॥
आयु गले मन ना गले. इच्छाशा न गलंत ।
तृष्णा मोह सदा बढे, यासे भव भटकन्त ॥ ३ ॥
ज्यों मन विषयों से रमें, त्यों हो आतम लीन ।
क्षणमें सो शिव तियवरें, क्यों भव भ्रमें नवीन ॥ ४ ॥
एक चरन जो नित पढे. तो काटे अज्ञान ।
पनिहारी की डोरिसे, सहज कटे पापाण ॥ ५ ॥
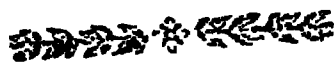
शास्त्रों के पढने व सुनने से हमको ज्ञान होगा कि धर्म क्या है ? स्त्रियों की कैसी पर्याय है ! पतिव्रता शीलवंती कैसे बन सक्ती है । सम्यक्त क्या है स्त्री पर्याय से छुटकारा होकर किस विधि मोक्ष प्राप्त हो सकता है ? यह सब धर्म के स्वरूप

अवश्य जानने योग्य है। सूत्रजी भक्तामरजी का मैं निषेध नहीं करती हूं मैं भी पाठ करती हूं मगर उसके अर्थ समझने की भी अति आवश्यकता है क्यों कि समझने से फल श्रेष्ठ और पूर्ण मिलता है। हमारी भाइयों व पिताओं से प्रार्थना है कि स्त्रियों को भी अवश्य धर्म लाभ पहुंचावें। विद्याभ्यास करावें। ज्ञान से लौकिक व पारमार्थिक सुख प्राप्त होता है। गृह में अज्ञानता के कारण जो कुछ भी त्रुटियां हों वह शास्त्र ज्ञान द्वारा दूर हो सकती हैं। धर्म नाम आशा छोड़ना शङ्का तजना। यह जीव कर्मों से ऐसे लिप्त हैं जैसे सोना—पत्थर या तिल—तेल। इस जीव का केवल ज्ञान, क्रोधादि जो कषाय हैं उनकर आछादित है, इन दोषों को यथोक्त रीति से दूर करने पर, वह निर्मल चिदानन्द ज्ञानमई शिवसरूपी आत्मा सूर्य्य समान प्रगट होजाता है।

२—स्त्रीयां गृह में अथवा वसतिका में रहकर धर्म साधन कर सकती है। आज कल इस पंचम काल में आर्जिका कम दृष्टि पडती हैं, इस लिए अपने गृह में ही बहुत कुछ धर्म साधन हो सकता है। इस पुस्तक के पढ़ने से भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होगा। भगवती आराधना श्लोक ८२ में लिखा हैं कि स्त्रीयों के महाव्रत भी होसक्ते हैं।

३-स्त्रियों का महाव्रत।

१६ हस्त प्रमाण १ सफेद वस्त्र अल्प मोल, पग की एड़ी सूं लेय मस्तक पर्यन्त सर्व अङ्ग कूं आछादन करि और मयूरपिच्छिका धारण करती ईर्या पथ करती, लज्जा है प्रधान जाकै, सो पुरुष मात्र में दृष्टि नहीं धारती, पुरुषन ते वचनालाप नहीं करती, ग्राम नगर के अति नजीक हू नहीं अति दूर हू नहीं, ऐसी वसतिका में अन्य आर्यिकानि के संघ में वसती, एक वार बैठ मौन सहित

भोजन करती (२४ याम पर्यंत एक पाव १००० चावल के बराबर) एक वस्त्र बिना निष्कलुप मात्र हू परिग्रह नहीं रक्खा करती, कुटुम्बादि से ममत्व रहित रहती—स्त्री पर्याय में प्रतिम की यही पूर्णता है — उपचार से महाव्रत कहिए, निश्चय में अणुव्रत ही है। पांचवें गुण स्थान ही हैं। बहुरि जो गृह में बसि करि, अणुव्रत धारण करि, शील संयम संतोष क्षमादि रूप रहने पर स्त्रीनि के अनुकूल हैं, सो संसार में दोऊ ही होंय।

४—जो देहली में "स्त्री शिक्षा" पर प्रस्ताव हुआ था सो प्रकाश करती हूं:—

स्त्री-शिक्षा।

देहली में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के २७ वें सन १९२३ वीर सं० २४४९ के अधिवेशन में सभापति, श्रीमान सेठ रावजी सखाराम दोशी (सोलापुर) के व्याख्यान से उद्धृत:।

स्त्री शिक्षा के बाबत सब किसी का मतभेद नहीं है परन्तु स्त्रियोंको शिक्षा किस तरह की देनी चाहिए उसमें मतभेद रहता है। **मेरी समझ में स्त्री को धर्मशास्त्र का अवश्य ज्ञान होना चाहिए।**

पण्डित आशाधरजी अपने सागार धर्मामृत में लिखते हैं कि

व्युत्पादयेत् तराम् धर्मे पँनी प्रेम परं नयन्।
साहि मुग्धा विरुद्धा वा धर्मात् भ्रंशयेत तराम॥

अर्थ—**अपनी पत्नी को धर्म में अच्छी तरह से व्युत्पन्न करना चाहिये।** क्योंकि यदि वह धर्म से अनभिज्ञ हो या प्रतिकूल होजाय तो अपने पति आदि को धर्म से भ्रष्ट कर देती है।

इस लिए स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा अवश्य देनी चाहिए और उसके साथ **लौकिक शिक्षा धर्मसे अविरुद्ध हो,** वह पढ़ानी

चाहिए। आहार शुद्धि का ज्ञान स्त्रियों को अवश्य चाहिए, सीने पिरोनेका ज्ञान, गृह व्यवस्थाका ज्ञान, यह अवश्य चाहिए। कई विद्वानोंका मत ऐसा है कि पुरुष और स्त्रीको शिक्षा एकसी होनी चाहिए। स्त्री पुरुष के हक्क समान हैं यह बात धर्म से विरुद्ध जाती है। देखो श्री आदिनाथ भगवान ने अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुँदरी को जब पढ़ाने का आरम्भ कर दिया उस वक्त उन्होंने जो उपदेश दिया उसका महत्व बड़ा है।

इदं वपुर्वयश्चेद मिदं शीलमनोदृशम।
विद्यया चेद्द्विभूष्येत सफलं जन्मवामिदम॥
विद्यावान पुरुषो लोके सम्मति यांति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीं सृष्टेरग्रिमं पदम्॥

अर्थ—यह आपका शरीर वय और शील यदि शिक्षासे भूषित होजायगा तो आपका जन्म सफल होगा जैसाकि विद्वान पुरुष लोगों में विद्वानों से श्रेष्ठताको प्राप्त करलेता है, उसी मूजब विदुषी स्त्री सृष्टि में श्रेष्ठ पदवी धारण करलेती हैं। प्यारे भाइयो! श्रीआदिनाथ भगवान के उपदेश को अच्छी तरह देखो, और उसी आदेश के माफिक अपनी पुत्रियों को विद्या पढाना चाहिए, पुरुष सृष्टि और स्त्री सृष्टि जुदी मानी गई है, दोनों की पढाई का मन्तव्य भी जुदा२ चाहिए अपने को स्त्रियों के लायक पाठ्य पुस्तकें भी अच्छी बनवानी चाहिये जिसमें स्त्रियों का धर्म अच्छी तरह बताया हो।

५—हे बहिनो! जो कुछ मुझ से अशुद्धि या अनुचित कहा गया हो उसे आप पण्डिता क्षमा करें।

जिन सेविका—
अनारदेवी, धर्मपत्नी श्रीमान लाला द्वारकाप्रसाद जैन, C. K.,
हाथरस निवासी व इस पुस्तक के प्रकाशक।

॥ धर्म-चर्चाएँ ॥

१—यदि स्वाध्याय में कोई शङ्का उपजे तो स्थानीय साधर्मी भाइयों से समाधान करलेवें अथवा डाक द्वारा किसी विद्वान से।

जो चरचा चित में नाहिं चढ़ै, सो सब जैन सूत्र सों कढ़ै।
अथवा जो श्रुत मरमी लोग, तिन्हैं पूछि लीजै यह जोग ॥
इतने में संसै रहिजाय, सो सब केवल मांहि समाइ।
यों निसल्य कीजै निजभाव, चरचा में हठ को नहिं दाव ॥

२—जैन पञ्चों में स्थानीय भाइयों से ज्यादा गुण होने चाहिए। पञ्च शब्द से यह अभिप्रायः है कि ये न्याय पूर्वक संसारी व धार्मिक कार्य करेंगे तथा समाज को चलावेंगे। समाज पर उनको सदैव गंभीर और क्षमा भाव रखने योग्य हैं। पण्डित भूदरदास जी कहते हैं।

जैन धरम को मरम लहि बरतै मान कषाय।
यह अपूर्व अचरज सुन्यौ जल में लागी लाइ ॥
जैन धर्म लहि मद बढ़ै वैद्य न मिल है कोई।
अमृत पान विष परणवै ताहि न औषध होई ॥
नीति सिन्घासन बैठौ वीर, मति श्रुतदोनु रापि वजीर।
जोग अजोग हंकरौ विचार, जैसे नीति नृपति व्यौहार ॥

३—प्रत्येक जैनी (श्रावक तथा श्राविका) को वातसल्य अङ्ग धारण करने का विचार रखना परमावश्यक है। यानी एक दूसरे को देखकर यथा उचित सन्मान करना, प्रसन्न होना, कुशलता पूछना तथा धर्म चरचा करना गाय बछड़े जैसी प्रीति होना इत्यादि—"गुणिषु प्रमोदं" इस प्रेम भाव को वातसल्य अङ्ग कहते हैं शक्ति माफिक एक दूसरेकी सहायता और सुश्रुषा करना।

४—हमको आपस में जुहार शब्द इस्तेमाल करना चाहिए। इस शब्द का अर्थ इस प्रकार है।

* श्लोक *

जुगादि वृषभोदेव: हारक: सर्व संकटान ।
रक्षक: सर्व प्राणाणां, तस्मात जुहार उच्चते ॥

अर्थ—जुहार शब्द में तीन अक्षर हैं १ जु २ हा ३ र। सो जु से अर्थ है कि जुग के आदि में भए जो श्री देवाधि देव ऋषभदेव भगवान—और ह. से हरने वाले सर्व सकटों के, और र, से रक्षा करने वाले कुल प्राणियों के, उनको हमारा तुम्हारा दोनों का नमस्कार हो और वह कल्याण करता परमपूज्य हमारा दोनों का कल्याण करें।

५—कृष्ण पक्ष को पड़वा का सुबह हो सोता हुआ दाहने स्वर में जागे और शुक्ल पक्ष की पड़वा को सुबह बाए स्वर में जागे तो शरीर निरोग्य रहे। यदि स्वर विपरीत हो तो करवट से बदले। भोजन के पीछे परमात्मा को नमस्कारकर दोनों हथेलियों को रगड़ नैत्रों से मल ले तो नैत्र रोग न होगा। यह धर्म साधन हेतु लिखा है।

६—प्रत्येक नगर में दि० जैन वाचनालय होना जरूरी है। जहां पर सब जैन अजैन भाई आकर बैठें वांचे चरचा करें इत्यादि फीस वगैरह किसी प्रकार की नहीं होना चाहिए। और हर स्थान पर मालवा औपधालय बड़नगर की शाखा भी रखनी लाभ दायक है।

७—यदि आप किसी को जैन धर्म का अमूल्य रस अमृत पान करा देवेंगे तो यकीन रखिए कि वह आप का बड़ा आभारी और उत्कृष्ट मित्र जन्म २ में होगा।

८ अज्ञान तिमिर व्याप्तिमयाकृत्य यथायथम् ।
जिन शासन महात्म्य प्रकाश: स्यात्मभावना ॥

स्वामी समन्त भद्राचार्य ने कहा है कि अज्ञान के अँधकार को नष्ट करके जैन धर्म के बड़प्पन का प्रकाश करना ही सच्ची प्रभावना है। इस लिए प्रत्येक स्त्री पुरुष को चाहिए कि जैन ग्रंथों को स्वयं पढ़े, दूसरों से पढ़ने के लिए कहें। और निर्धनों

को शास्त्रदान करके उनको ज्ञानी बनावें। इस काल में इस से बढ़कर और कोई पुण्य कार्य नहीं। धनी धर्मात्माओं को ग्रंथ मुफ्त में बाँटकर अपने धन को सफल करना चाहिए।

९—किसी भी धर्म शास्त्रों व पुस्तकों के पत्र, थूक की नमी से, नहीं पलटने चाहिए। और विनय से रखना चाहिए।

१०—धर्म साधन व स्वाध्याय समय अधोअङ्ग नहीं खुजाना चाहिए।

११—किसी से वाद विवाद करने का उद्देश्य जैनियों को कदापि न करना चाहिए। प्रश्न पर मृदु वचन से समाधान करना व कर देना योग्य है।

१२—भारतवर्षीय दिगम्बर संस्थाओं से निवेदन है कि जो जो पुस्तकें उनके यहां से विना मूल्य वितरण हेतु छपीं हों वो एक २ प्रति मुझे अवश्य भेजने की कृपा करें।

१३—बहुतों का ख्याल है कि छपे ग्रंथ पुस्तकादि से अविनय होती है इस लिए हम उनको ग्रहण नहीं करते सो ऐसे भाइयों से नम्र प्रार्थना है कि—विनय करना, न करना, हमारा ही कर्तव्य है। लाभ नुकसान सर्वत्र विचारा जाता है और विचारणीय है। हमको छपे ग्रन्थों की विनय हस्त लिखित ग्रंथों के माफिक करनी चाहिए। क्यों कि ज्ञानावर्णी कर्मों का आश्रय, अविनय से होता है। हस्त लिखित शास्त्रों में छपे ग्रंथों का निषेध हमारे देखने में आया नहीं।

१४—प्रगट हो कि २४ तीर्थंकर भगवान धर्म चलाने वाले होते हैं। उनके पर्व इस प्रकार हैं—

आदिनाथ,	अजितनाथ,	संभवनाथ,	अभिनंदनाथ,	सुमितनाथ
१	२	३	४	५
शीतलनाथ	श्रयांसनाथ	विमलनाथ	अनंतनाथ	धर्मनाथ
१०	११	१३	१४	१५
शांतनाथ	कुन्थनाथ	अरहनाथ	मल्लनाथ	नमिनाथ
१६	१७	१८	१९	२१

इन १६ तीर्थंकरों का सुवर्ण

महावीर
२४

पद्मप्रभू ६	वासपूज्य १२	इन का लाल
सुपार्श्वनाथ ७	पार्श्वनाथ २३	,, ,, हरित
चन्द्रप्रभू ८	पुष्पदन्त ९	,, ,, श्वेत
मुनिसुव्रतनाथ २०	नेमनाथ २२	,, ,, श्याम

यह कथन ध्यानयोग्य है कि अर्हत भगवान के शरीर का वर्ण सुवर्ण, लाल, हरित, श्वेत और श्याम है तभी हमारे अजैन भाइयों को आपने कहते हुए सुना होगा, काले राम, पीले राम, हरे राम (गोरे) सफेद राम, लाल राम—विचारनीय बात है कि राम शब्द यहाँ श्री रामचन्द्रजी से मतलब नहीं है परंतु भगवान से। और श्री रामचंद्रजी से मतलब लिया जावे तो एक शरीर के इतने रङ्ग नहीं हो सकते इस लिए यह स्वयं सिद्ध हुआ कि "राम" भगवान से मतलब है श्री रामचंद्र जी का श्वेत वर्ण था वे भी अर्हन्त भगवान होकर श्री मांगी तुङ्गी से सिद्ध हो गए हैं, देखो श्री पद्मपुराण (जैन रामायण) जैनी लोग उनको भी पूजा वंदना करते हैं।

आज श्री रामचन्द्रजी और रावण की लड़ाई को, ११ लाख ८७ हजार वर्ष व्यतीत हुए हैं।

१५—

मोक्ष

रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र)

देव गति

मनुष्य गति — तिर्यंच गति

नरक गति
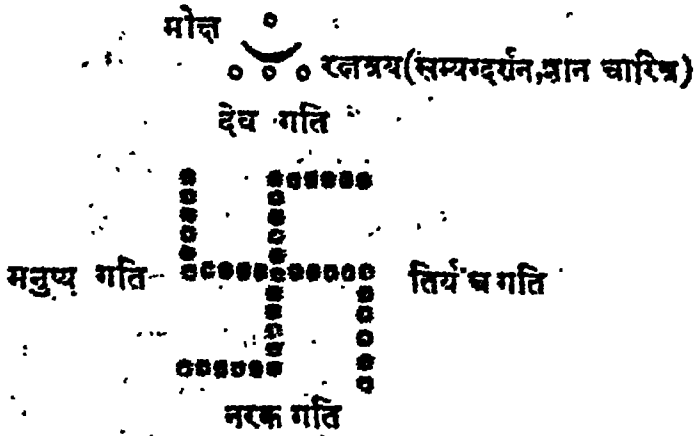
इस सांतिये से यह मतलब है कि धर्म साधन करते हुए रत्नत्रय द्वारा मोक्ष ग्रहण होता है उसी को नित्य यादगारी में पूजन के समय सांतिया काढ़ा जाता है—चार गतियों में यह जीव किस तरह भ्रमण करता है सो जैन शास्त्रों से जानना।

१६—सम्पूर्ण तत्वों को जानने वाली तथा तीनों लोक के तिलक के समान अनंत श्री को प्राप्त होने वाले श्री सन्मति (महावीर या वर्द्धमान) जिनेंद्र को मैं वंदना करता हूं। जो कि उज्वल उपदेश के देने वाले हैं, और मोह रूप तन्द्रा के नष्ट करने वाले हैं। भावार्थ श्री दो प्रकार की होती है। एक अंतरङ्ग दूसरी बाह्य। अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंत वीर्य इस अनंत चतुष्टय रूप श्री को अंतरङ्ग श्री कहते हैं। और समवसरण अष्ट प्रातिहार्य आदि बाह्य विभूति को बाह्य श्री कहते हैं। यह श्री तीन लोक की तिलक के समान है, क्यों

कि सर्वोत्कृष्ट है ॥ दोनों श्री में अंतरंग श्री प्रधान है । अंत-रंग श्री में केवल ज्ञान प्रधान है । इसी लिए कहा है कि वह समस्त तत्वों को, सम्पूर्ण तत्व और उसकी भूत भविष्यत् वर्तमान समस्त पर्यायों को जानने वाली है । इस श्री को श्री सन्मति (अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी) ने प्राप्त कर लिया था, वे सर्वज्ञ थे, इस लिए उनको वंदना की है । वे वीर भगवान केवल, सर्वज्ञ ही नहीं हैं, हितोपदेशी भी हैं ॥ उन्होंने जो जगज्जीवों को हितका—मोक्ष का—मार्ग बताया है, वह (हितोपदेश) उज्ज्वल है । उस में प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी प्रमाण से बाधा नहीं आती ! तथा वीर भगवान मोहरूप तंद्रा के नष्ट करने वाले हैं । अर्थात वीतराग हैं । अतः सर्व ज्ञाता हितोप-देशकता वीतरागता इन तीन असाधारण गुणों को दिखाकर इष्ट देव अंतिम तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी को जिनका कि वर्तमान में तीर्थ प्रवृत्त हो रहा है नमस्कार कर मङ्गलाचरण करते हैं ।

इसी हेतु हम विचार करते हैं कि जहां तहां जो श्री इस्तेमाल की जाती है उसका उपर्युक्त अर्थ है—पत्रों में "सिद्धिश्री" का भावार्थ सिद्धों और श्री महावीर स्वामी से है ।

नोटः—*८ प्रातिहार्य

दोहा—तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार ।
तीन छत्र शिरपर लसैं, भामंडल पिछवार ॥
दिव्यध्वनि मुखतैं खिरै, पुष्प वृष्टि सुर होय ।
ढारैं चौसठि चमर यक्ष, बाजें दुंदुभि जोय ॥

१७—सूतक प्रमाण विचार ।

पीढ़ी	दिन
पीढ़ी ३ तक	१२
चौथी पीढ़ी	१०
पांचवीं ,,	६
छट्ठीं ,,	४
सातवीं ,,	३
आठवीं ,,	१
नवमीं ,,	४ पहर
दशवीं ,,	स्नान मात्र

एक साल के बालक का तीन दिन ।

साधु का सूतक नहीं लगता ।

अपघातसे मरे उसके घर ६ महिना

गाय घोड़ा आदि घरमें जन्मे, मरे तो सूतक १ दिन ।

बालक जन्मे उसके गृह १० दिन, प्रसूति स्थान को १ माह और गोत्रके मनुष्यों को ५ दिनका ।

१८—वैर से वैर को शांति नहीं ।

—*०*—

खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केण वि ॥

प्रत्येक जीव व मनुष्यको किसी दूसरे से वैर भाव नहीं करना चाहिए इस से संसार दीर्घ होता है और वह वैर परस्पर बढ़ता जाता है यहां तक कि अनंत भवों में नहीं छूटता, पस ऐसा करने से मोक्ष मार्ग पर जीव नहीं लगता इस लिए बुद्धिमान चतुर मनुष्य व स्त्रीयां किसी से वैर नहीं करते तथा वैर का निमित्त आजाने पर, सौ सूरत से उसको टाल देते हैं ।

इस शरीर में ५६८९९५८४ रोग भरे हैं जिस में नेत्र रोग सिर्फ ९६ हैं। इस लिए शक्ति प्रमाण हमेशा धर्म साधन करते रहो। तीर्थ यात्रादि धर्म सब तरुण अवस्था में अच्छे साधन होते हैं। न मालुम यह शरीर, हम से कब छूट जावे आज

कल नाना प्रकार के रोग व क्लेशादि का अक्सर चक्र फिरा करता है। पौरुष इन्द्रियां थकने पर यथावत नहीं हो सकता। शुरू से धर्म साधन करते हुए नाना प्रकार के भावों का यह जीव ज्ञायक हो जाता है। तो अंत समय समाधि मरण भले प्रकार कर सकता है। समाधि मरण इस जीव ने कभी नहीं किया। इस लिए भ्रमण कर रहा है। एक दफे भी समाधि मरण हो जावे तो, मोक्ष पंथ पर लग जावे—हमारे ऊपर किसी प्रकार का कष्ट दुख, वैर, इत्यादि से उपसर्ग हो, सब धैर्यता से सहो, प्रभू का स्मर्ण करो ईश्वर के सहस्र नाम है। शिव, विष्णु ब्रह्म, सिद्ध, इत्यादि जो तीन लोक के शिखर पर विराजते हैं। लोक आगे लगा देने से शिव लोक विष्णु लोक, ब्रह्म लोक, सिद्ध लोक यह मोक्ष के नाम हो जाते हैं। अन्य स्थान व और कोई नहीं—जब धैर्यता से कष्ठ, दुख वैर इत्यादि सहोगे, तो अंत में कोई ऐसी बात पैदा होगी जो हमारे अमूल्य होवेगी, मेरा यह कई बार का तजरुवा किया हुआ है। कोई चुगली करे या गालियां भी देवे तो धर्म ध्यान पूर्वक सहो शांत रहो। उस ही की आत्मा, जिव्हा खराब होवेगी उस ही के सर पर पाप (गुनाह) सवार होवेगा। प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जो कोई अपना मुह दूसरे की तरफ टेढ़ा करेगा, तो दर्पण से, उस ही का टेढ़ा दीखेगा। और लोकापवाद होगा और उसका दुःख फल वही भोगेगा। शांत धैर्य पूर्वक, सुनने वाले को कर्म निर्जरा होगी। शांतता, और गुण बढ़ेंगे, लोक प्रशंसनीय होगा यदि शांतता न धारण करोगे तो दोनों समान हो जावोगे। किसी कवि ने कहा है कि—

दुख शोक जब जो आपड़े, सो धैर्य्य पूर्वक सब सहो।
होगी सफलता क्यों नहीं, कर्तव्य पथ पर दृढ़ रहो॥

१९—बहुबीजे का स्वरूप।

गूदे की अपेक्षा बीज ज्यादा और एकदम गिरपड़ें और बीज के बीच में पुट (छिलका) न होवै और एक घरमें रहते हो सो बहुबीजा जान लेना—(सूखे फलोंमें दोष नहीं)

वहुवीजे के फल ।

अफीम का डोड़ा, गीलो लाल मिरच, तिजारा, पोस्त, धतूरा सत्यानासी, एरंड खरबूजा, पपीतो, इलायची हरी:—

२०—जैन धर्म उद्योत करने के मुख्य उपाय ।

दान चार प्रकार में, शास्त्र दान प्रधान ।
अष्ट कर्म को नष्ट कर, पावे मोक्ष निदान ॥
धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्म पंथ साधे विना, नर तिर्यंच समान ॥

(अ) स्थानीय और भारतवर्षीय जैन अजैन समाजों में जैन धर्म की प्राचीनता प्रगट कर आत्म सुख का सच्चा उपाय बताना ।

(ब) सर्व प्रकार के ग्रन्थों का संग्रह कर स्थानीय व ग्रामादि समाज में स्वाध्याय प्रचार करना । तथा भारतवर्षीय जैन समाज में षटकर्म रूपी नियमावली प्रकाशित कर स्वाध्याय व धर्म प्रचारार्थ बिना मूल्य वितरण करना ।

(स) जैन समाजकी अशिक्षित स्त्रियों में विद्या प्रचारार्थ हिंदी पुस्तकें बिना मूल्य बांट कर आत्म हित पर लाना ।

(उ) अमूल्य जैन ग्रन्थ व पुस्तकें प्रकाश कर बिना मूल्य बांटना और मासिक पत्र को भारत वर्षीय जैन समाज को बिना मूल्य भेजना ।

(ई) बालकों के धर्म शिक्षार्थ पाठशालायें खुलवाना ।

२२—दो घडी (४८ मिनट) में ३७७३ स्वांस होते हैं:

२३—विचारने योग्य प्रश्न ।

(अ) इस प्रश्न पर रोज विचार करो कि मैं कौन हूं ?

(व) नर देह बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है । इसे विषय भोगों में व्यर्थ मत खोओ। परोपकार एवं आत्म कल्याण में लगाओ।

(स) सब जीवों से मैत्री भाव रक्खो।

(उ) मैं ज्ञानमयी चैतन्य हूं।

(ई) देह मेरी नहीं, जड़ है।

(फ) पर वस्तु (मात पिता स्त्री भ्राता पुत्र पुत्री इत्यादि कुटुम्बी जन, द्रव्य, महल, मकान, जमीन, शरीर जिसमें अपना चैतन्य रम रहा है, इत्यादि में आपा मत मानों। मानना दुखदाई है।

(ज) शुद्ध खान पान करना। सादा आहार, वस्त्र, चाल चलन ठीक रखना व कुसङ्गतियों से वचना मनुष्य का कर्तव्य है।

(ह) जीव मात्रकी रक्षा करो।

२४—प्रत्येक ग्राम नगर मे यह अमृत रूपी धर्मोपदेश जैन अजैन भाइयों की सभा कर प्रति मास सुनाना चाहिये।

२५—यह पुस्तक प्रत्येक जैन मंदिर, उपदेशक, सभाओं धर्म प्रेमी, सरस्वती (जिनवाणी) भंडार में रखना चाहिये।

२६—अहिंसा परमो धर्मः । यतो धर्मः ततो जयः ॥ धर्मात्माओं के बिना, धर्म, अन्यत्र कहीं नहीं पाया जा सकता है।

२७—गृहस्थ के कर्तव्य।

१—सर्वज्ञ वीतराग देव की पूजा, निर्ग्रंथ गुरु की उपासना स्वाध्याय, संयम, तप और दान नित्य प्रति करना।

२—मधु मांस और मद्य के सर्वथा त्याग और हिंसा झूंट चोरी कुशील और परिग्रह का एक देश त्याग करना।

३—मिथ्यात्व, सप्तव्यसन, अन्याय, अभक्ष्यका, सर्वथा त्याग कर पंच अणुव्रतोंके पालनमें जैनियोंको तत्पर रहकर जन्म सफल करना चाहिये।

जैनियों के चिन्ह।

१—जिन दर्शन करना, जल छानकर पीना और रात्रि भोजन त्याग करना।

२६—पढने योग्य शास्त्र।

वीतराग सर्वज्ञ कथित जो। तत्व अतत्व प्रकाशक हो।
रहित विरोध पूर्वापर हो। मिथ्यामत का नाशक हो॥ १॥
नहीं उलंघ सके पर वादी। धर्म अहिंसा भासक हो।
आत्मोन्नति का मार्ग विधायक शास्त्र हमारा शासक हो॥ २॥

३०—उद्देश।

हर एक के साथ भाईयाना वर्ताव करते हुए मनुष्य मात्रकी सेवा कर जैन धर्म का प्रसार करना।

नोट—"जिन" सन्सकृत में जीतने वाले को कहते हैं यानी जिसने क्रोधादि १८ दोष जीत लिये वह जिनेन्द्र सर्वज्ञ हितोपदेशक, का कथित धर्मोपदेश, उसको "जैन धर्म कहते हैं।

३१—नीति वाक्य।

Be just & fear not. "मुनसिफ हो डरो मत"।
Be good & do good. "नेकी करो नेक रहो"।
Plain living & high thinking. "सरल आचार उच्च विचार"।
Love your King & do your duty. "अपने राजा बादशाह से महोब्बत करो और अपना फर्ज अदा करो"।

३२—कोई प्रश्न करे कि सम्यग्दृष्टी अथवा सम्यक्की की क्या पहिचान? उसका समाधान पं० भूदरदासजी ने चर्चा

समाधान ग्रन्थ चर्चा नं० १७ में इस प्रकार किया है "यश तिलक नाम काव्य विषै पुरुष के चार वाह्य लक्षण कहे हैं। चार ही सम्यक्त के कहे हैं—यानी स्त्रीजन के संभोग करि ! बेटा बेटी कें उपजावने करि * विपती विषै धीर्य भाव सों * आरंभ कार्य के निरवाह से * इन चार चिन्ह करि पुरुषकी अतीन्द्रय पुरुष शक्ति जानी जावे है तैसे ही शान्त भाव * संवेग भाव * दया भाव * आस्तिक्य भाव * इन चारौं अव्यभिचारी भावनसों सम्यक्त रत्न जाना जावैहै—यानी

१—क्रोधादि रहित सम भाव को शान्त भाव कहिये।

२—कोमलता युक्त परिणाम को दया भाव कहिये।

३—धर्म, धर्म के फल विषे प्रीति होय तथा देह भोग सों उदासीनता होय तिसे संवेग भाव कहियें।

४—आप्तागम पदार्थ विषै नास्ति बुद्धि न होय जिसे आस्तिक भाव कहिये।

यह चारों भाव कभी विभचरें नहीं। विकार रूप न होवें यह सम्यकदृष्टी का वाह्य लक्षण है।

नोट—जिसने सम्यक्त ग्रहण कर लिया उसके हाथ में चिन्तामणि है। धनमें कामधेनु जिसके घरमें कल्पवृक्ष है उसके अन्य क्या प्रार्थना की आवश्यकता है। कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामणि तो कहने मात्र है। सम्यक्तव ही कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामणि है यह जानना (परमात्म प्रकाश श्लोक १४१ से उद्धृत)

३२—उपदेश।

१—सन्सार में अनादि से प्रचलित मिथ्यामतों के जाल से बचने के लिये पहले अपने जैन शास्त्रों को पढ़ो और उनका मनन करो।

२—स्वाध्याय करने के नियम धारण करो। जैन धर्म प्रचार करने का यही एक उपाय है।

३—अपने जीवके समान समस्त जीवों को जानो।

४—दूसरों के दुखों को दूर करने के लिये हर तरह में तय्यार रहो।

५—जैन धर्म का उपदेश सन्सार के समस्त जीवों के कल्याण के लिये है। यह किसी एक समुदाय विशेष का ही धर्म नहीं है। इसलिये इसका प्रचार जगत भरमें करदो।

६—अपने से कोई बात शास्त्र विरुद्ध भूलसे कही जाय तो उस भूल को हर समय स्वीकार करलो। झूंठा पक्ष मत करो।

७—प्रत्येक नगर में जैन सभा, जैन पाठशाला और जैन पुस्तकालय की स्थापना करदो। और अपने नवयुवक जैन अजैन भाइयों को धर्मानुराग कराते रहोः—

३४—जैन धर्म के सिद्धान्त।

(१) जैन धर्म आत्मा का निज स्वभाव है।

(२) सन्सारी आत्माही मिथ्यात्व रागद्वेषादि भावों का नाशकर अपनी सम्पूर्ण कर्मरूपी माया से अलिप्त हो परमात्म अवस्था को प्राप्त कर लोक शिखर पर अतीतकाल के शुद्धात्माओं की अवगाहना में ही एक क्षेत्रावगाह रूप स्थित हो अनन्त काल तक अनन्त सुखमें मग्न रहा करता है।

(३) पूर्वोक्त परमात्म पद के अविनाशी सुख में प्राप्त होने का अहिंसामयी उपदेश जैनधर्म से ही मिलता है और वह अहिंसा, राग द्वेषादिक भावों से प्राणों का घात न करना ही है।

(४) सन्सार में अहिंसामयी वीतराग विज्ञानता ही सार भूतहै अतः उसको प्राप्त करनेके लिये वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी की ही उपासना करना योग्य है।

(५) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छः द्रव्यों मय जगत अनादि सिद्ध है।

(६) जीवात्मा से नितान्त भिन्न कोई एक परमात्मा नहीं है।

३५—स्त्री शिक्षा ।

ता०-१७-११-२५—को जैन महिलाश्रम संगली में मुनि श्री शान्तिसागरजी महाराज ने धर्मोपदेश इस प्रकार दिया था। "स्त्रियों को शिक्षा अवश्य देनी चाहिये" क्योंकि उन्हीं की शिक्षापर समाज की भवितव्यता का आधार है। प्राचीन काल में जैन समाजकी कितनी महिलाओंने विदुषी-पने को धारण कर अपनी विद्वत्ता के जोर से जैन धर्म का डङ्का बजा दिव्य ध्वजायें फहराई थीं। देखिये ? जैन कन्या "चेलना देवी" ने जैन धर्म के तत्वों का रहस्य समझाकर अपने पति बौद्ध धर्मी "राजा श्रेणिक" को जैन धर्म का दासानुदास बना भविष्य काल में प्रथम तीर्थंकर के बंध होने का महत् कार्य करवाया था। पुनः देखिये तीर्थंकरों को जन्म देने वाली "वामादेवी" और त्रिसलादेवी आदि स्त्रियों की देवों ने आकर सेवा की है। स्त्रियों का पद श्रेष्ठ है। समस्त सन्सारकी जन्म दात्री "महिलाओ" को लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकारकी शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। इत्यादि: २....................

(जैन महिलादर्श अङ्क १० माघ सुदी ३ वीर २४५२ से उद्धृत)

नोट—यह वर्तमान समय में निर्ग्रंथ दिगम्बर गुरु हैं समाज को ध्यान पूर्वक इनके उपदेश पर कन्या को और स्त्रियों को विद्याभ्यास धर्म शास्त्र अवश्य पढाना चाहिये। ताकि उनकी आत्ता का भी पूर्ण रूप से कल्याण हो और कन्या पाठशालाएं भी जगह २ खुलने की आवश्यकता है।

प्रार्थी—द्वारकाप्रसाद जैन हाथरस।

३६—अरहंत भगवान के ४६ मूल गुण।

३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य, ४ अनन्त चतुष्टय=४६ यानी।

जन्म के (१०)—१ अत्यन्त सुंदर शरीर, २ अति सुगंधमय

शरीर, ३ पसेवरहित शरीर, ४ मलमूत्र रहित शरीर, ५ हितमित प्रिय वचन बोलना, ६ अतुल्य बल, ७ दुग्धवत् श्वेत रुधिर, ८ शरीर में १००८ लक्षण, ९ समचतुरस्र संस्थान, १० वज्र वृषभनाराच संहनन—यह अतिशय जन्म से ही उत्पन्न होते हैं।

केवल ज्ञान के १०—१ एक सौ योजन में सुभिक्षता, यानी चारों तरफ सौ २ कोश में सुकाल, २ आकाश में गमन, ३ चारमुखों का दीखना, ४ अदया का अभाव, ५ उपसर्ग रहित, ६ कवल (ग्रास) वर्जित आहार, ७ समस्त विद्याओं का स्वामीपना, ८ नख केशों का नहीं बढ़ना, ९ नेत्रों की पलकें नहीं झपकना, १० छाया रहित शरीर।

देव कृत १४ अतिशय—१ भगवान की अर्द्ध मागधी भाषा का होना, २ समस्त जीवों में परस्पर मित्रता का होना ३ दिशाओं का निर्मल होना, ४ आकाश का निर्मल होना, ५ सब ऋतु के फल पुष्प धान्यादिक का एक ही समय फलना, ६ एक योजन तक की पृथिवी का दर्पणवत निर्मल होना, ७ चलते समय भगवान के चरण कमल के तले सुवर्ण कमल का होना, ८ आकाश में जय जय ध्वनि का होना, ९ मंद सुगंधित पवन का चलना, १२ सुगंध मय जल की वृष्टि होना, ११ पवनकुमार देवों के द्वारा भूमिका कण्टक रहित होना, १२ समस्त जीवों का आनंदमय होना, १३ भगवान के आगे धर्मचक्र का चलना, १४ छत्र, चमर, ध्वजा, घंटा, पंखा, दर्पण, कलश, झारी अष्ट मङ्गल द्रव्यों का साथ रहना, इस प्रकार ३४ अतिशय अरहंत के होते हैं।

८ प्रातिहार्य—अशोकवृक्ष का होना, २ रत्न मय सिंहासन, ३ भगवान के सिरपर तीन छत्र का फिरना, ४ भगवान के पीछे भामण्डल का होना, ५ भगवान के मुख से दिव्य ध्वनि का होना, ६ देवों के द्वारा पुष्प वृष्टि का होना, यक्ष देवों द्वारा ६४ चँवरों का ढुरना, ८ दुंदुभि बाजों का बजना।

४ अनंत चतुष्टय—१ अनंत दर्शन, २ अनंत ज्ञान ३ अनंतसुख ४ अनंत वीर्य।

सिद्धों के ८ मूलगुण—१ सम्यक्त्व २ दर्शन, ३ ज्ञान, ४ अगुरुलघुत्व, ५ अवगाहनत्व, ६ सूक्ष्मत्व, ७ अनंतवीर्य्य, ८ अव्याबाधत्व एवं विशेष हाल जैन शास्त्रों से जानना।

३७—दूसरी चेतावनी ।

बुद्धी वैभव बढ़ाने के लिए राग द्वेष क्रोधादि द्वारा अन्याय विपरीत आचरण हमें न करना चाहिए। हम जिन जिन के आधीन है उनका न्याय पूर्वक फर्माबरदारी में रहें। अथवा जो जो हमारे आधीन है उनपर दयाभाव रखना उचित है।

३८ अ—हमारा श्रीजीसे प्रार्थना व आशीरवाद है कि श्रीमान महोदय महामान्य सम्राट पंचम जार्ज, वृटिश सरकारका समस्त पृथ्वी पर अटल राज्य हो, कि जिन के राज्य में हम पूर्ण स्वतंत्रता पूर्वक धर्म साधन व धर्मोन्नति करते हैं। व श्रीमान महोदय मान्यवर, हिज एक्सेलेंसी गवर्नर जनरल हिंद, हिज एक्सेलेंसी गवरनर, संयुक्त प्रांत United Province और श्रीमान महोदय कलक्टर साहब बहादुर जिले *अलीगढ़, न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट साहब व तहसीलदारजी साहब * हाथरस को अनेक कोटिशः हार्दिक धन्यवाद है कि वे हम दिगम्बर जैनियों की हर तरह से हिफाजत देख रेख करते हैं। तथा धर्म साधन में हर्ष पूर्वक मदद देते हैं।

नोट—*जो वक्ता जिस स्थान का हो, वह वहां के स्थानों को पढ़ें।

स—अब मैं अंतिम कुछ मङ्गल भजन करके अपने स्थान पर प्रस्थान होता हूं। जो कुछ भी प्रमाद व अज्ञानता वस, मुझसे गलतियाँ व अशुद्धी हुई हों, उनके लिए जिनवाणी से क्षमा प्रार्थी हूं। तथा जो २ पण्डित चतुर विद्वजन हों, मुझ मंद बुद्धि पर क्षमा भाव कर, सुधार करेंगे। मैंने तो, केवल, भक्ति व धर्म साधन वस यह धर्मोपदेश लिखा है यद्यपि मैं असमर्थ हूं जैसे बालक, चंद्रमा को पकड़ना चाहे।

३९—मेरी भावना व निवेदन (नमः सिद्धेभ्य)

सब प्राणी मात्र, शक्ति प्रमाण, यथा धर्म शास्त्रोक्त रीति पर धारण करो। ज्ञानी बनो ज्ञान वान होने का निमित करना मनुष्य पर्याय को ही है इसालिये कोई पुरुष व स्त्री स्वाध्याय

बगैर नहीं रहना, नित्य करना। यम नेम अवश्य करना॥ श्रावक, श्राविका वृत ग्रहण करें। यदि शक्ति और पौरुष ठीक हो तो शास्त्रों का मनन कर द्रव्य क्षेत्र, काल भाव अनुकूल हों, तो वृह्मचर्य्य त्याग, मुनि वृत ग्रहण कर अपना और दूसरों का कल्याण करिये वरना ग्रहस्थावस्था में ही जो कुछ बने करते रहो। अपने और दूसरों को पहिचानो। सब जीवात्मा आत्मशक्ति अपेक्षा समान हैं, तिल मात्र भी फर्क नहीं है। कर्मापेक्षा भिन्नता है।

नोट—स्वाध्याय करने के पांच भेद है, पढना, सुनना, उपदेश देना, मनन करना, प्रश्न करना, सो जिस जीव की जैसी शक्ति हो, ग्रहण करें। एक २ शास्त्र को खुद पढने व सुनने से यह जीव पूर्ण अवस्था को प्राप्त होता है।

४०— आत्मज्ञान माला

बागां में तू न जा रे चेतन, घट ही में फुलवार हो ॥टेक॥

ज्ञान गुलाब चरित्र चमेली, विना वेल सुविचार हो॥
चरचा चम्पा महक रही है, मरवो मोह निवार हो॥ १॥
रायवेल सिर सरदा सोहै, शील शिरोमणि धार हो।
काई कुमत जहां तहां निरखत, देखत कुमत निवारहो॥२॥
समकित माली विवेक वेल ज्यों, आतम रोप निहार हो।
क्यारी क्षमा जहां तहां सोहै, सींचत अमृत धारहो॥३॥
बहु विध कर यह वृक्ष फलो है, दराक्ष फल लागी डारहो।
धन्य पुरुष जिन वाग निहारो, अब चल देख बहार हो ॥४॥

४१—भाई से भाई की प्रीति । भजन !

हुक्म हमको पिताजी का बजाना ही मुनासिब है ।
अवध को छोड़कर जङ्गल में जाना ही मुनासिब है ॥टेक॥
नहीं है रोश का मौका सुनो लछमन मेरे भाई ।
मात केकई के आगे सर झुकाना ही मुनासिब है ॥ १ ॥
अवध के तख्त पर अबतो नहीं बैठूंगा मैं हरगिज़ ।
ताज मेरा, भरत के सर सजाना ही मुनासिब है ॥२॥
धनुष तुम ने जो चिल्ले पर चढ़ाया है बिना समझे ॥
धनुष को चाप से उल्टा हटाना ही मुनासिब है ॥ ३ ॥
राज के वास्ते, भाई न भाई से, लड़ेंगे हम ।
वचन राजा का अब हमको निभाना ही मुनासिब है ॥४॥
हुआ भारत सभी गारत पड़ी जो फूट आपस में ।
कहे न्यामत फूट को अब मिटाना ही मुनासिब है ॥ ५ ॥
श्री जिनेंद्र पद नमनतें, होंहि सब सुख संच ।
करम भरम सबंध का, कारन रहै न रंच ॥

४२—श्लोक (अंतिम प्रार्थना)

धन्येयं पृथिवी तथैव जनता धन्याश्च देशोप्ययं,
धन्या वत्सर मास पक्षदिवसा धन्यः क्षणोऽयं च नः ।
यत्रास्माभिरसौ परस्परमभिप्रीत्या च सोदर्यवत् ।
संहत्या स्थितिमारचय्य परमो धर्मो निजः प्रस्तुतः ॥

अर्थ—धन्य है यह पृथ्वी, धन्य है यह मंडल, धन्य है यह देश, धन्य है यह वर्ष, धन्य है मास, धन्य है यह पक्ष, धन्य है यह दिन, धन्य है यह क्षण, जिस में अपने सब भाई एकत्रित होकर परस्पर प्रेम पूर्वक धार्मिक प्रस्ताव करते हैं ।

बोलो—जैन धर्म की जयः—

जिन सेवक—द्वारकाप्रसाद जैन C. K. (गोत्र कौलभंडारी)
जैसवाल—क्षत्रीय—इक्ष्वाकुवंश हाथरस निवासी,
सभापति श्री दि० जैन धर्म प्रभावनी सभा व पो० मास्टर साभर लेक
(हैड ऑफिस) राजपूताना (मई १९२५ ई०)

औषधिदान !

श्रीमती स्वर्गीय भगवान देवी जैन पारमार्थिक औषधालय स्थापित वीर सम्वत २४५१) हाथरस यू० पी० के।

१ उद्देश्य—शुद्ध औषधी और औषधिदान का सर्वत्र प्रचार कर रोगी दुखी जनो की पीडा दूर करना।

२ नियम—धर्म रहे अरु धन बचे, रोग समूल नसाय।

यह सुख शीघ्र उठाइये शुद्ध औषधी खाय॥
शरीर की निरोगता पुरुषार्थ साधन सेतु है।
कंचन सुगंधित देह का निर्माण औषधि हेतु है॥
दान औषधि पुण्य यश कर बचें नृप धन प्राण है।
जगमें शिरोमणि नर वही जो देत जीवन दान है॥
धर्मार्थ खोला—औषधालय रूप्य दृष्टी दीजिए॥
शुभ द्रव्यदेकर आप अपना यश उपार्जन कीजिए॥
जो वीर दानी दानसे इसको समुन्नति देइंगे।
वे पद व फोटो से विभूषित होइंगे पुनि होइंगे॥

३—सर्व औषधि व नुस्खे मुफ्त। वैद्यजी बिनाफीस असमर्थ रोगी का देखते हैं।

४—स्थापित ता० २८ मई १९२५ से ३१ जनवरी १९२६ तक २५२० रोगियों को दवाएँ दीगई जिनमें से २३७७ को आराम हुआ।

—आर्थिक मासिक सहायना की छपी रसीद दी जाती है। विवरण प्रतिमास जैन समाचार पत्रों में व वार्षिक रिपोर्ट में छपकर प्रकाशित होता है।

६—जो निम्न लिखित सहायता देंगे उन्हें नीचे लिखे पदों से विभूषित कर उन के फोटो औषधालय में सुशोभित किए जावेंगे और सारा द्रव्य औषधालय के कार्य में लगाया जावेगा।

मूल संस्थापक	१ ही	२५०००)	जैन जाति रत्न
संस्थापक	५ ही	१००००)	जैन जाति वीर
मुख्य संरक्षक	१ ही	६०००)	जैन बंधु
संरक्षक	१० ही	४०००)	जैन हितैषी
मुख्य सहायक	२५ ही	१०००)	धर्म[illegible]

सहायक	१० ही	५००)	उदार चित्त
मुख्य पोषक	२५ ही	१०१)	श्रीमान
पोषक		१ से १००)	तक

स्त्री समाज।

मूल सदस्या	१ ही	१५०००)	स्त्री रत्न
संस्थापिका	५ ही	५०००)	स्त्री भूषण
मुख्य संरक्षिका	३ ही	३०००)	जैन बहिन
रक्षिका	७ ही	२०००)	जैन हितैषिणी
मुख्य सहायका	१० ही	१०००)	धर्मज्ञ
सहायका	१५ ही	५००)	उदार चित्त
मुख्य पोषिका	२५ ही	१००)	श्रीमती
पोषिका		१ से ९९)	तक

७—अजैन समाज भी योग्य पदों से विभूषित किए जायगे।

८—इस औषधालय को १२५) रुपये की मासिक जरूरत है श्रीमती भगवानदेवी ने ३०००) का ध्रौव्य फण्ड में दान किया है जिस की आमदनी व्याज में सिर्फ १५) मासिक है इस लिए द्रव्य के अभाव से पूर्ण रूप में कार्य चालू होना असम्भव है। देखिए श्रीमती औषधिदान कर परभव में चली गई और यहाँ पुण्य यश लेगई।

हमें अपने जीवन का एक पल का भी भरोसा करना योग्य नहीं और धर्म साधन में तत्पर रहना चाहिए।

९—इस औषधालय के संरक्षक व ट्रस्टीज, श्रीमती लक्ष्मीकुमारि जैन रईसा और श्रीमान कुँवर महाराजसिंहजी जिनराजसिंहजी जैन रईस ज़मींदार कासगंज हैं।

१०—प्रबंधक श्रीमान बाबू चतुर्भुज जी जैन गवर्नमेंट पेंशनर द्वारकाप्रसाद, होतीलाल जैन पोस्टमास्टर, चुन्नीलाल जैन B.Sc (ENG) F. C. I. (BIR) इनजीनिअर तथा निर्माण प्रबंधकर्त्ता श्री महावीर दि० जैन मंदिर हाथरस हैं।

समाज हितैषी—

द्वारकाप्रसाद जैन,
मैनेजर व कोषाध्यक्ष

श्रीमती भगवानदेवी जैन पारमार्थिक औषधालय,

मुकाम हाथरस (जिला अलीगढ़) यू० पी०
HATHRAS, U. P.